अहिंसा के पथ पर

''अरी ! ठकुरानी ! मुन्ना अभी तक स्कूल से क्यों नहीं लौटा, तीन बजने को आ गये ?'' घड़ी में टाइम देखकर बेचैनी के साथ इधर-उधर टहलते हुए ठाकुर सज्जनसिंह बोले।

ठाकुर की बात सुनकर अन्दर के कमरे में अनमने भाव से काम कर रही ठकुरानी बाहर चली आयी। वह भी काफी बेचैन नजर आ रही थी। वह बोली ''मेरा भी तो यही कहना है। आखिर वह अभी तक आया क्यों नहीं एक बजे के लगभग तो वह रोजाना लौट ही आता है। कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी। आप जल्दी से जाइये मुन्ने की खबर लेने।''

''नहीं, नहीं; ऐसा कुछ नहीं हुआ होगा। वह आता ही होगा, कहीं खेलने-कूदने में लग गया होगा'' ठकुरानी को आश्वस्त करने के उद्देश्य से ठाकुर बोले।

ठाकुर ऊपरी मन से तो ठकुरानी को समझा रहे थे, परन्तु अन्दर ही अन्दर वह भी काफी आंशकित हो चले थे। अनायास ही उनके कदम मुन्ने को ले आने के उद्देश्य से बाहर की तरफ बढ़ चले।

''तुम अन्दर काम करो ह्न मैं अभी मुन्ने की खबर लेकर आता हूँ।'' जाते हुए ठाकुर ने कहा।

वह अभी कुछ ही कदम आगे बढ़ पाये थे कि तभी उनके कानों से बरामदे में से किसी के चलने की पदचाप सुनाई देने लगी। बाहर से आनेवाली पदचापों की आवाजें ठकुरानी ने भी सुनी थीं। आवाजें सुनकर वह अन्दर के कमरे में जाते-जाते रुक गई।

ठाकुर खुश होते हुए बरामदे की ओर लपके। ''ये देखो हमारा मुन्ना

आ गया है।''

ठकुरानी भी उनके पीछे-पीछे बरामदे में चली आयी। सामने से ही एक लड़का चला आ रहा था। वह उनके मुन्ने की उम्र का ही था, परन्तु उनका मुन्ना नहीं था। दोनों की खुशी एक क्षण में ही विलीन हो गयी।

लड़का पास आकर ठाकुर सज्जनसिंह की तरफ एक चिट्ठी बढ़ाते हुए बोला ह्न ''ठाकुर काका ! उस आदमी ने यह चिट्ठी आपको देने के लिए कहा है।''

''कौन आदमी !'' ठाकुर ने कहा और तेजी के साथ पत्र अपने हाथ में लेकर खोलते हुए पढ़ने लगे। पत्र में लिखा था ह्न ''ठाकुर सज्जनसिंह ! तुम्हारा प्यारा मुन्ना हमारे कब्जे में है। यदि उसे पाना चाहते हो तो एक लाख रुपये लेकर रात्रि के ठीक एक बजे काला पहाड़ पर अकेले पहुँचो। यदि पुलिस वालों के चक्कर में पड़ने की कोशिश की तो तुम्हारे मुन्ने की जान खतरे में पड़ जायेगी।''

पत्र पढ़ कर ठाकुर सज्जनसिंह को अपने पैरों के तले से जमीन खिसकती नजर आयी। उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। ठकुरानी के हाथ में पत्र थमाते हुए मरे-मरे से स्वर में बोले ह्न ''मुन्ने का अपहरण कर लिया है।''

पत्र पढ़ने के बाद ठकुरानी की दशा तो ठाकुर से भी बदतर हो गयी। उसे काटो तो खून नहीं। और फिर अगले कुछ ही क्षणों के बाद वह दहाड़ मार-मार कर जोर-जोर से रोने लगी ह्न ''हाय मेरा मुन्ना ! हाय मेरा मुन्ना, अब मेरे मुन्ने का क्या होगा। हे भगवान ! हाय राम ! ये तुमने कौन से पाप की सजा हमें दी ? हे भगवान ! अब मैं क्या करूँ ? हाय मेरा मुन्ना, हे भगवान ! हमने ऐसा कौन सा पाप किया ? हाय मेरे मुन्ने को किसी भी तरह से बचाओ हाय मेरे....''

''इस तरह से रोने चिल्लाने से काम नहीं चलेगा। धैर्य रखो, मैं अभी

रुपयों का इन्तजाम करता हूँ'' ठाकुर सज्जनसिंह बदहवास होते हुए बोले और फिर कुछ सोचकर तेज-तेज कदमों से चलते हुए अपने भाई बलवन्तसिंह के मकान पर जा पहुँचे।

प्रोफेसर बलवन्तसिंह का मकान उनके मकान से लगभग ३०० मीटर की दूरी पर एक टेकरी पर स्थित था। ठकुरानी भी रोते-बिलखते हुए प्रोफेसर के मकान पर उनके पीछे ही जा पहुँची।

उनको ऐसी हालत में अपने मकान पर आया हुआ देखकर प्रोफेसर बलवन्तसिंह आश्चर्य में पड़ गये। इससे पहले कि वह कुछ समझ पाते, ठाकुर सज्जनसिंह उनके हाथ में पत्र थमाते हुए बोले ह्न ''भैया ! मुन्ने का अपहरण हो गया है।''

पत्र को पढ़ते हुए प्रोफेसर भी काफी चिन्तित हो उठे। पर प्रोफेसर गंभीर व्यक्तित्व के धनी थे, वे उनको सान्त्वना देते हुए बोले ह्न ''घबराने की कोई बात नहीं है। मुन्ना तो मिल ही जायेगा। जमींदारों के लिए एक लाख रुपये की व्यवस्था कर लेना तो कोई बड़ी बात नहीं है। अभी पुलिस को खबर करने से कोई फायदा नहीं है। तुम रुपये लेकर सही समय पर काला पहाड़ पहुँच जाओ।''

रात्रि में लगभग साढ़े बारह बजे एक घुड़सवार जंगल के रास्ते को पार करते हुए आगे बढ़ता चला जा रहा था। जंगल में रात्रि के सूनेपन को घोड़े की टापों की आवाजें भंग कर रही थीं। उस घुड़सवार के चेहरे और भेष-भूषा को देखकर यह अनुमान आसानी के साथ लगाया जा सकता था कि यह कोई ठाकुर है। लगभग आधे घण्टे तक चलते रहने के बाद उस घुड़सवार ने घोड़े की लगाम खींच ली। चलता हुआ घोड़ा हिनहिनाकर रुक गया। घुड़सवार ने नजरें घुमाते हुए चारों तरफ देखा। चाँदनी के प्रकाश में दूर-दूर तक फैली हुई बड़ी-बड़ी चट्टानों के सिवाय उसे कुछ भी नजर नहीं आ रहा

था। अचानक ही उसकी नजर पास की चट्टान पर उभरते हुए एक साये पर पड़ी। भारी भरकम एवं लम्बा-तगड़ा, डील-डौल चेहरे पर घनी दाढ़ी, लम्बी-लम्बी मूंछें और सिर पर काले रंग का साफा। उस साये के कन्धे पर एक बहुत ही बड़ी राइफल लटक रही थी। चट्टान पर प्रगट होते हुए वह साया बोला ह्न ''अच्छा हुआ ठाकुर सज्जनसिंह कि तुम यहाँ पर बिल्कुल सही समय पर आ गये। हमें पूरा विश्वास था कि तुम यहाँ पर जरूर आओगे। बच्चे का मोह ही कुछ ऐसा होता है और फिर आज के जमाने में एक लाख रुपये की वकत ही क्या है ?''

''काला आतंक ! मेरा बच्चा मेरे हवाले कर दो, ये लो तुम्हारे रुपये !'' रुपयों से भरी अटैची खोलकर दिखाते हुए ठाकुर सज्जनसिंह गुर्राये। इस समय उनकी आँखों से काला आतंक के लिए घृणा बरस रही थी।

''बच्चा ह ह ह........'' एक उपेक्षा पूर्ण हंसी हंसते हुए काला आतंक के रूप में प्रसिद्ध डाकू काल सिंह आदेश के स्वर में बोला ह्न ''पहले रुपया मेरे हवाले करो। तुम्हारा मुन्ना भी तुम्हें मिल जायेगा।''

डाकू के आदेश का पालन करते हुए ठाकुर सज्जनसिंह घोड़े से नीचे उतरकर डाकू के पास जा पहुँचे और रुपयों से भरी अटैची डाकू की तरफ बढ़ा दी। डाकू ने अटैची अपने हाथ में ले ली।

''अब मेरा मुन्ना मेरे हवाले कर दो।'' ठाकुर अधीर होते हुए बोला।

''मुन्ना ह ह ह ह .... एक भयावह हंसी हंसते हुए डाकू बेरहमी पूर्वक चिल्लाया ''चले जाओ यहाँ से। तुम्हारा मुन्ना तुम्हारे घर पहुँच जायेगा।''

''नहीं ! नहीं ! ऐसा मत करो। मेरा मुन्ना मुझे सौंप दो।''

''सुना नहीं तुमने, तुम्हारा मुन्ना तुम्हारे घर पहुँच जायेगा। बेरहमी पूर्वक डाकू पुन: चिल्लाया और फिर चट्टानों के पीछे की ओर कूदते हुए कहीं ओझल हो गया।

बेबश, असहाय ठाकुर सज्जनसिंह घोड़े पर सवार होकर पुन: अपने घर की तरफ भागे। उनका घोड़ा सरपट भागा जा रहा था और ठाकुर सज्जनसिंह के मस्तिष्क में कई प्रकार की आंशकाएँ तेजी के साथ भागती जा रही थीं।

लगभग एक घण्टे बाद वे अपने घर पहुँचे। परिवार वाले उनका बेसब्री के साथ इन्तजार कर रहे थे। उनके घोड़े से नीचे उतरते ही परिवार वाले उनकी तरफ लपके ह्न ''मुन्ना कहाँ है ? क्या हुआ मुन्ने का ? क्या मुन्ना नहीं मिला ?

''मुन्ना, मुन्ना यहाँ नहीं आया ? आ जायेगा। अभी आता ही होगा'' ठाकुर सज्जनसिंह ने कहा और मुन्ने की इन्तजारी में आँखें फाड़े हुए वहीं पर निराश से होकर बैठ गये।

मुन्ने का इन्तजार करते-करते सवेरा हो गया, दिन चढ़ा, सांझ ढल गयी और फिर रात हो आयी और फिर सवेरा हो गया, परन्तु मुन्ना नहीं आया। रोते-रोते सबका बुरा हाल हो चुका था। सभी जगह बात फैलने लगी कि ठाकुर के लड़के का अपहरण हो गया है। शहर में जाकर सम्पूर्ण वस्तुस्थिति को बताते हुए प्रोफेसर बलवन्तसिंह द्वारा पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवा दी गई। मुन्ने की खोज का अभियान जोर-शोर से चल पड़ा। काला पहाड़ के क्षेत्र में पुलिस के जवान चारों ओर बिखर गये।

जंगल की तरफ एक गुफा के अन्दर आठ-दस डाकू बैठे थे। डाकुओं के पास ही सात-आठ वर्ष की उम्र का एक लड़का भी बैठा हुआ था। उस लड़के के चेहरे से यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता था कि रो-रोकर उसका बहुत ही बुरा हाल हो गया था। डाकूदल में आपस में बहस छिड़ी हुई थी। एक डाकू कह रहा था ह्न ''सरदार ! शर्त के मुताबिक तो हमें इस लड़के को उसके माँ-बाप तक पहुँचा देना चाहिए। इस बेचारे के परिवार

वाले पर क्या बीत रही होगी ?

''अरे नहीं, ये माँ-बाप के पास रहने के काबिल नहीं है। इसे तो हम अपने पास रखेंगे और डाकू बनायेंगे'' सरदार कालसिंह बोला।

नहीं सरदार ! हमें ऐसी गद्दारी नहीं करनी चाहिए। हमें तो सिर्फ रुपयों से मतलब था सो प्राप्त हो गये। हमें अपने सिद्धान्तों को नहीं भूलना चाहिए। इस बेचारे मासूम के साथ हमें ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिए। इसके वियोग में इसके माता-पिता की कैसी दशा हो रही होगी ?'' एक दूसरा डाकू बोला।

''अरे ! तुम तो बड़े दयालु बनते हो। दयालुता का डाकू कर्म के साथ कैसा तालमेल ? याद रखना फिर कभी ऐसी दया की बातें की तो मैं तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा, खोपड़ी खोल दूँगा। किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए ह्न यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ'', सरदार कालसिंह क्रोधित होकर चिल्लाया। साथ ही उसने अपनी पिस्तौल भी उस व्यक्ति की तरफ तान दी, जिसने दया की बातें की थीं।

''माफ कर दो सरदार ! मैं फिर कभी ऐसी बात नहीं करूँगा'' वह डाकू डर के मारे थर-थर कांपते हुए बोला।

डाकूदल नशे में चूर होकर इसीप्रकार के शोर-शराबे में उलझा हुआ था कि इसी बीच मुन्ना चुपके से गुफा के बाहर खिसक लिया और वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

सरदार कालसिंह ने मुन्ने को गुफा के अन्दर नहीं पाया तो वह चिल्लाया! ''अरे लड़का कहाँ गया ? पकड़ो इसे और इसके साथ ही वह गुफा से बाहर निकल आया। पहाड़ी की ढलान की ओर उसे मुन्ना भागते हुए नजर आया। तबतक वह डाकुओं की पकड़ से आगे निकल चुका था। उसे देखकर कालसिंह बड़बड़ाया ह्न ''यदि वह भागने में सफल हो गया तो हमारे रहने

का ठिकाना भी पुलिस को बता देगा। इसे तो ठिकाने लगाना ही पड़ेगा'', यह सोचकर उसने पिस्तौल चला दी, जिससे भागता हुआ मुन्ना वहीं पर ढेर हो गया।

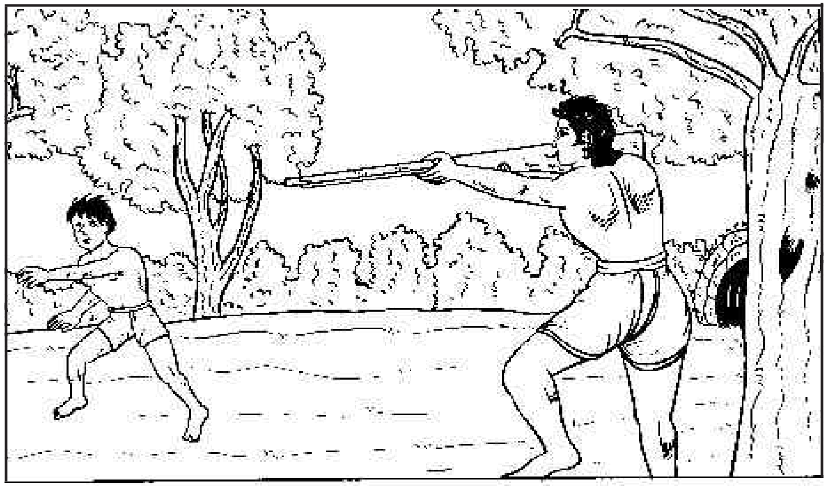

ठाकुर सज्जनसिंह को मुन्ने की लाश प्राप्त हो चुकी थी और उसकी अन्तेष्टि भी की जा चुकी थी। परन्तु ठाकुर और ठकुरानी का अपनी इकलौती सन्तान के वियोग के कारण रो-रोकर बहुत बुरा हाल हो चुका था। समय की इन्तजारी के बाद ही तो यह एक सन्तान प्राप्त हो सकी थी और वह भी छीन ली गयी। ठाकुर के परिवार की खुशियाँ उड़ गयीं। उनकी रातों की नींद उड़ चुकी थी और दिन का चैन हराम हो गया था।

इस घटना को घटित हुए लगभग छह महीने व्यतीत हो चुके थे, परन्तु फिर भी ठाकुर का चित्त स्थिर नहीं हो पाया था और ऐसा लगता था जैसे जीवन भर तक इस दु:ख को वे भुला नहीं पायेंगे। एक दिन सान्त्वना देने के उद्देश्य से उनके भाई प्रोफेसर बलवन्तसिंह उनके घर पहुँचे। उनको देखते ही ठाकुर सज्जनसिंह की आँखें गीली हो गयीं। बोले ह्न ''न मालूम कौन-से

पाप की सजा मिल रही है, ऐसे कौन-से पाप किये हैं हमने।''

''पाप ! पापों का तो पार ही नहीं है जीवन में। यह पूँछो कि कौन-से पाप नहीं किए हैं जीवन में ? और फिर पापों की सजा तो भुगतनी ही पड़ती है। पाप न किये हों और उसका फल हमें भुगतना पड़े ह्न ऐसा तो हो ही नहीं सकता।'' प्रोफेसर बलवन्त सिंह गम्भीर होते हुए बोले। फिर उचित अवसर देखकर आगे कहने लगे ह्न ''तुम पूछते हो ऐसे कौन-से पाप किये हैं हमने। तुम्हें याद है ह्न एकबार जब हम छोटे थे, लगभग सत्रह-अठारह साल के, तब हम जंगल के रास्ते से साइकिलों पर सवार होकर यहाँ अपने घर की तरफ आ रहे थे कि रास्ते में तुम्हें एक खरगोश दिखाई दे गया था। बस, फिर क्या था, साइकिल एक ओर खड़ी कर उस खरगोश को प्राप्त करने के लिए तुमने उसका पीछा किया था। मैंने तुम्हें बहुत रोका पर तुम नहीं माने और उस खरगोश के बच्चे को पकड़कर ले ही आये। तब मैंने तुमसे कहा था ह्न ''अरे छोड़ दो इस बेचारे को। यह कितना दु:खी हो रहा है अपने माँ-बाप के पास जाने के लिए कितना छटपटा रहा है और मैं कहता हूँ छोड़ दो इसे वरना ठीक नहीं होगा।''

तब तुमने कहा था ह्न ''जानते हो, इसका शिकार करने में कितना मजा आता है। बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद। मैं इसको किसी हालत में नहीं छोडूँगा।''

और उस समय इसी बात को लेकर हम दोनों में हाथा-पाई भी हो गयी थी, परन्तु उस समय शारीरिक दृष्टि से मैं तुमसे कमजोर था। तुमने मुझे जोर से धक्का दिया था और उस खरगोश के बच्चे को साइकिल पर सवार होकर घर चले आये थे।

घर आकर भी मैंने तुम्हारा बहुत विरोध किया, परन्तु तुमने मेरी एक नहीं सुनी। माता-पिता, बहनें आदि भी तुम्हारे पक्ष में थे और फिर तुम्हें

मालूम होगा, उसी दिन से मैंने अपना चौका अलग कर लिया था। स्वयं अपने हाथों से अलग भोजन बनाने-खाने लगा था।

और मैंने यह भी देखा कि कुछ दिनों बाद जब वह खरगोश का बच्चा वहाँ से भागकर जा रहा था, तब तुमने उस भागते हुए खरगोश के बच्चे को सूट कर दिया था। उस समय मुझे बहुत दु:ख हुआ था, परन्तु तुम उसे निशाना बनाकर बहुत खुश हो रहे थे, जैसे तुमने कोई बहुत ही बड़ा बहादुरी का काम कर दिखाया हो।

और उसी दिन तुमने उसका मांस पकवाकर सबके साथ मिलकर चटकारे ले-लेकर खाया था। क्या भूल गये इन सब बातों को ? बोलो ! जबाब दो, चुप क्यों हो, क्या यह पाप तुमने नहीं किया था ?

अपने किये कर्म की सजा तो भुगतनी ही पड़ती है। सज्जनसिंह ! संभव है उस पाप की सजा तुम्हें इस रूप में भुगतनी पड़ रही हो।

जब तुमसे अब इतना-सा दु:ख ही सहन नहीं हो पा रहा, तब नरक के दु:ख तुम कैसे सहन कर पाओगे ? ऐसे-ऐसे तो न जाने कितने ही खरगोशों को तुमने ठिकाने लगा दिया है, कितने ही मुर्गों और बकरियों को तुमने पका-पका कर खाया है। शायद ही कोई प्राणी ऐसा बचा हो जिसकी तुमने हत्या न की हो। तुम्हारे यहाँ पर सांप व छिपकलियों को भी तो देखते ही मार दिया जाता है। मच्छरों, चूहों व खटमलों को दवाई छिड़क कर मौत के घाट उतार दिया जाता है। रोजाना अण्डों का सेवन किया जाता है। कितने ही प्राणियों को अपने माँ-बाप एवं बच्चों से छीन लिया जाता है। तुम इस बात को भूल गये कि प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन प्यारा होता है। प्रत्येक प्राणी सुखी रहना चाहता है तथा दूसरे प्राणी को कष्ट पहुँचाकर कभी कोई सुखी नहीं हो सका है। तुम इस बात को बिल्कुल ही भूल गये हो कि अहिंसा के पथ पर चलकर ही जीवन की खुशियों को आबाद किया जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि मेरी ये बातें इस समय तुम्हें जरूर ही कड़वी लग रही होंगी, परन्तु मुझे तुमसे कहने का पूरा-पूरा अधिकार है; क्योंकि मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम्हारा हितैषी हूँ।

तुम स्वयं सोचो, इन पापों के फल भुगतने के लिए अपने आत्मा को नरक में जाने से क्या तुम रोक सकोगे ? अपने किए पापकर्मों का फल तो भुगतना ही पड़ेगा। किसी भी तथाकथित जगत के कर्ता-धर्ता परमेश्वर की सेवा-उपासना अथवा खुशामद करके भी इसको टाला नहीं जा सकता। वस्तुत: तो किसी के पापों को माफ कर पाना यह किसी परमेश्वर के वश की बात है ही नहीं। स्वयं के द्वारा किये गये पाप एवं पुण्य के फल तो प्राकृतिक रूप से स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। इसको टालने में कोई भी समर्थ नहीं है। अभी भी वक्त है। तुम हिंसा के मार्ग को छोड़कर अहिंसा के मार्ग को अपना लो, तभी तुम्हें सुख की प्राप्ति हो सकेगी। जैसे कर्म करोगे, वैसा ही तो फल मिलेगा। जैसा बीज पड़ेगा वैसा ही तो वृक्ष फलेगा।

जो मुन्ना गया वह तो फिर से प्राप्त होने वाला है नहीं, इसके वियोग में दु:खी होना व्यर्थ है। अब तो आनेवाले जीवन को अपने सत्कर्मों से संवारो।

''अब मैं अधिक क्या कहूँ तुम स्वयं विचार करना'' कर्म सिद्धान्त में अटूट आस्था रखनेवाले धर्मप्रिय प्रोफेसर बलवन्तसिंह दृढ़तापूर्वक समझाते हुए बोले।

ठाकुर सज्जनसिंह को इस समय अपने भाई की बातों में काफी सत्यता नजर आ रही थी। साथ ही साथ काफी शान्ति भी मिल रही थी, फिर भी हृदय की पीड़ा को व्यक्त करने के उद्देश्य से पूँछ बैठे ह्न ''ये सब पाप तो मैंने किये और उनकी ही सजा मुझे मिल रही है यह तो ठीक है; परन्तु बेचारे मुन्ने का क्या होगा ?''

''मुन्ने ने भी पूर्व के किसी भव में कोई न कोई पाप किया होगा, जिसके

फल में उसकी ऐसी दशा हुई। यह आत्मा तो अनादि काल का है न ! यह कोई जरूरी तो है नहीं कि इसी भव में किये गये कर्मों की सजा (फल) हमें इसी भव में मिल जाये। किये गये कर्मों का फल हमें इसी भव में भी प्राप्त हो सकता है और अगले किन्हीं भवों में भी प्राप्त हो सकता है। यह सब प्रकृति की व्यवस्था के ही आधीन है। प्रकृति में अपने द्वारा किये कार्यों का पूरा-पूरा हिसाब रहता है। उसका फल तो हमें भुगतना ही पड़ता है। ये डाकू लोग भी अपने द्वारा वर्तमान में किये जा रहे पापों के फल भुगतने से बच नहीं सकते। कभी न कभी तो इसका फल उन्हें भी भुगतना ही पड़ेगा। भले ही वे इस जन्म में न भी पकड़े जा सकें तो भी इससे क्या ? प्रकृति के हाथ (कर्म-सिद्धान्त) तो बहुत लम्बे होते हैं। इसके ऊपर किसी का भी वश नहीं चल सकता। तुम धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करो, तभी तुम्हें कर्मसिद्धान्त का वास्तविक स्वरूप समझ में आ सकेगा और इस तरह से तुम्हारी आत्मा को भी सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकेगी। जो हो गया उसे तो; अब भूल ही जाओ और अब से धर्म के मार्ग पर चल पड़ो। बस, सुखी होने का यही सच्चा उपाय है।'' प्रोफेसर बलवन्तसिंह ने काफी देर तक समझाया और फिर अपने घर को चले गये।

ठाकुर सज्जनसिंह के हृदय में उनके भाई बलवन्तसिंह की ये बातें अक्सर गूँजती रहती थीं ह्न ''अहिंसा के पथ पर चलकर ही जीवन की खुशियों को आबाद किया जा सकता है। दूसरे प्राणी को कष्ट पहुँचाकर न तो कभी कोई सुखी हो सका है और न कभी कोई सुखी हो सकेगा। प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन प्यारा होता है। पाप न किये हों और उसका फल हमें भुगतना पड़े ह्न ऐसा तो हो ही नहीं सकता आदि।''

ऐसा लगता था जैसे ठाकुर का हृदय धीरे-धीरे परिवर्तित होता जा रहा हो और फिर एक दिन ठाकुर ने ठकुरानी की उपस्थिति में अपने बावर्चियों व

सभी नौकरों को अपने पास बुलाया और सबको आदेश दिया कि ''आज से भोजन में किसी भी प्रकार का मांस नहीं पकाया जायेगा और किसी भी जीव की हिंसा नहीं की जायेगी। सबको शुद्ध शाकाहारी भोजन ही खाने के लिए दिया जायेगा।''

और फिर प्रोफेसर बलवन्तसिंह ने अनुभव किया कि उस दिन से लगाकर आजतक कभी भी ठाकुर के घर की तरफ मांस के पकाये जाने की गंध नहीं आयी, उसे बड़ी खुशी हुई और उस दिन तो उनकी खुशी का कोई पार ही नहीं रहा, जब ठाकुर सज्जनसिंह ने उनके पास आकर कहा ह्र ''भैया मैंने सदा-सदा के लिए मांस खाना छोड़ दिया है, अब तो तुम मेरे यहाँ भोजन के लिए पधारो, कल के दिन आपके पूरे परिवार को मेरे यहाँ भोजन का आमंत्रण है।''

प्रोफेसर बलवन्तसिंह ने हंसते-हंसते स्वीकृति दे दी और अब बलवन्तसिंह की तरह सज्जनसिंह का जीवन भी धर्ममय बनने लगा।

कोई नहीं कह सकता कि किसके जीवन में कब क्या परिवर्तन आ जावे। पतित से पावन और पापी से परमात्मा बनने में भी देर नहीं लगती।

जो आज त्रिलोक पूज्य देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे ही कभी पतित, पापी और पशु-पर्याय में थे। अत: पाप तो घृणा योग्य है, पर पापी नहीं।

संस्कार, अध्याय - **१**, पृष्ठ - **७८**

खट्टे अंगूर

खरगोश महाशय जंगल में घास चर रहे थे कि तभी उनके पास एक लोमड़ी आकर बोली ह्र ''क्यों बेटा खरगोश ! क्या कर रहे हो ?''

''अम्मा ! घास चर रहा हूँ और पेट भर रहा हूँ।'' खरगोश महाशय ने सहजभाव से उत्तर दिया।

''बेटा ! सारे दिन घास ही क्या चरते रहते हो ? हमको देखो न ! जो जी में आया सो खाया और जो जी में आया सो पिया। तुम्हारी तरह हम मन को मारते थोड़े ही हैं। जब, जो जी में आये सो करो, खाओ-पिओ और मौज करो। संयम में क्या धरा है ? सुख तो मौज-मस्ती में है।'' लोमड़ी हँसते-हँसते एक ही सांस में अपनी सब बात कह गयी।

''अम्माजी ! आपकी बातें सुनने में तो बड़ी मीठी और सुहावनी लगती हैं, परन्तु आपने क्या कभी यह भी सोचा है कि ह्र ''इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाना क्या अपने वश की बात है ?'' यह तो पुण्योदय के आधीन है। पुण्योदय के बिना जब इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी। तब भी तो मजबूर होकर मन को मारना ही पड़ेगा। इससे तो यह बेहतर है कि हम इच्छाओं को पहले से ही क्यों न जीत लें ?'' खरगोश ने कहा।

''अरे ! छोड़ो भी ये सब पुण्य-पाप की बेकार बातें। क्या धरा है इनमें ? यह सब तो कायर और पुरुषार्थहीन लोगों की बातें हैं। ऐसी कौन-सी चीज है, जिसे हम पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं कर सकते।'' लोमड़ी खरगोश की बातों की उपेक्षा करती हुई बोली।

''ऐसा नहीं है अम्मा ! यह तो आपने बहुत बड़ा भ्रम पाल रखा है। परद्रव्यों में अपना पुरुषार्थ चलता ही कहाँ है ? अपनी इच्छा के अनुसार

परद्रव्यों के कार्य होना तो पुण्योदय के आधीन ही हैं, अपने आधीन नहीं या फिर वस्तुस्वातंत्र्य की मुख्यता कहें तो परद्रव्य के कार्य उन्हीं द्रव्यों के आधीन हैं। अपनी-अपनी स्वयं की योग्यता से ही प्रत्येक कार्य होते हैं। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। एक द्रव्य का कार्य दूसरा द्रव्य रंच मात्र भी नहीं कर सकता। उपादान की योग्यता हो तो ही कार्य होता है।'' खरगोश ने कहा।

कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त लोमड़ी आवेश में आते हुए बोली ह्न ''अरे तुम्हारी ये फिलासफी तो तुम अपने ही पास रहने दो। यदि सब ऐसा ही सोचने लगें तो जगत का विकास ही ठप्प हो जायेगा, सबकुछ अवरुद्ध हो जायेगा'' तुम नहीं कर सकते होगे परद्रव्यों के कार्य। हम तो जो चाहें वह सब कर सकते हैं।'' लोमड़ी ने कहा।

वहीं पर सामने एक अंगूर का झाड़ था। अंगूर काफी ऊँचाई पर थे। खरगोश मौका देखकर बोला ह्न ''अच्छा अम्मा ! यदि ऐसा है तो जरा वो अंगूर ही तोड़कर बता दो न !''

''हाँ, हाँ क्यों नहीं ? अभी देखो।'' लोमड़ी आवेश में आकर बोली

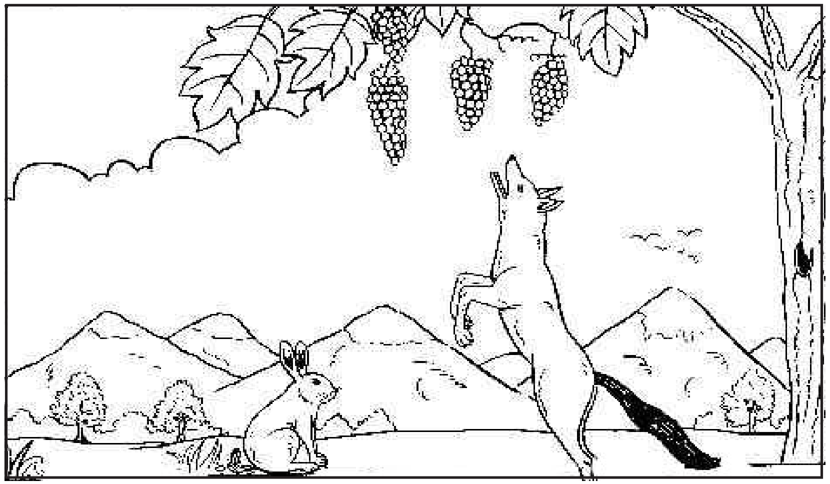

और पेड़ के नीचे पहुँचकर छलांगें मारने लगी। सभी दिशाओं में मुड़-मुड़कर कूदी। पसीने से लथपथ हो गयी, पर अंगूर न तोड़ सकी। उसने खरगोश की तरफ देखा। उसके चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट देखकर वह कुछ-कुछ लज्जित तो हुई, परन्तु वह अपनी हार आसानी से स्वीकार करने वाली कहाँ थी ? उसे अपनी लाज बचाने की एक युक्ति सूझी और फिर अगले ही पल अभिनय करते हुए बोली ह्न ''अरे ! ये अंगूर तो कच्चे हैं और खट्टे हैं, मैं इन्हें तोड़कर क्या करूँगी ?'' इतना कहकर वह वहाँ से चलती बनी।

''सचमुच ! परद्रव्यों के कार्य कर सकना खट्टे अंगूर जैसा ही तो है।'' खरगोश भागती हुई लोमड़ी को सीख देते हुए बोला; परन्तु लोमड़ी तो खरगोश की सीख सुनने से पहले ही काफी दूर निकल चुकी थी।

चिन्ता हो या चिन्तन ह्न नींद तो दोनों में ही नहीं आती, पर चिन्ता से चिन्तन ही श्रेष्ठ है। चिन्ता एक मानसिक विकृति का नाम है और चिन्तन है विशुद्ध तत्त्वविचार। चिन्ता अशान्ति और आकुलता की जननी है और चिन्तन है निराकुलता और शान्ति का स्रोत। चिन्तायें चेतन को जलाती हैं और चिन्तन राग-द्वेष को, मन के विकारों को। चिन्ताओं के घेरे में आत्मा अनुपलब्ध रह जाता है और चिन्तन से होती है आत्मतत्त्व की उपलब्धि।

अत: विवेकीजन चिन्ताओं की राह छोड़कर चिन्तन की राह ही पकड़ते हैं। तत्त्वचिन्तन ही सदैव आदरणीय है, अनुकरणीय है।

संस्कार, अध्याय -**५**, पृष्ठ - **४३**

एक शेर और तीन तत्त्वज्ञ

जंगल के भयंकर रास्ते को पार करते हुए कमाने के उद्देश्य से दो व्यक्ति आपस में बात करते हुए किसी दूसरे देश को जा रहे थे। उनमें एक लम्बा था और एक ठिगना। अत: लोग उन्हें लम्बू और छोटू नाम से ही पुकारने लगे थे। लम्बू कह रहा था ह्न ''मित्र धन कमाने के लिए हम कितनी मुसीबतों का सामना करते हैं, कितनी मेहनत करते हैं। यदि इतना परिश्रम हम धर्म कार्य के लिए भी करें तो कल्याण हुए बिना न रहे। परन्तु यह राग का स्वरूप बड़ा ही विचित्र है। वास्तव में विचार किया जाये तो जितनी झंझटें और आकुलताएँ इस घर-गृहस्थी के कार्यों में झेलते हैं, उतनी झंझटें धर्म साधन के कार्यों में कहाँ होती ? धर्मसाधन के कार्यों में तो इस तुलना में कुछ भी आकुलता नहीं है, कोई झंझट नहीं है; फिर भी देखो ! सबकुछ जानते हुए भी राग के कारण ऐसे बंधे हुए हैं कि धनादि संचय में तो सब मुसीबतें उठाने के लिए तैयार हैं और धर्मसाधन के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं।''

छोटू उसकी बात का समर्थन करते हुए बोला ह्न ''बिल्कुल ठीक बात है, तुम्हारा सोचना एकदम सही है और फिर इस बात की भी तो कोई गारन्टी नहीं है कि अपार कष्ट झेलने और कड़ी मेहनत करने के बाद भी हम धन को इकट्ठा कर ही लेंगे। धन का इकट्ठा हो पाना या न हो पाना तो पूर्वकृत पुण्य-पाप के उदय के आधीन है। वर्तमान की मेहनत के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। कड़ी से कड़ी मेहनत करनेवाला कमा लेता है। वर्तमान में जो हमें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, वह तो पूर्व में किये गये किसी पापकर्म के फल का परिणाम है। संभव है कि पूर्व भव में कभी हमने अपना जीवन मौज-मस्ती मारने और ऐशो-आराम करने में ही व्यतीत किया हो, जिसके फल में

अब हमें कड़ी मेहनत करनी पड़ रही है। इसप्रकार धन का परिणमन भी स्वतंत्र है और मेहनत का परिणमन भी स्वतंत्र है।''

इसप्रकार की बातों में मशगूल होकर वे दोनों भयंकर जंगल को चीरते हुए आगे बढ़े जा रहे थे कि तभी दिल को दहला देनेवाली शेर की भयंकर दहाड़ सुनकर वे भय के मारे सिहर उठे।

उन्होंने घबराकर उधर देखा, जहाँ से आवाज आ रही थी। तो, क्या देखते हैं कि कुछ ही दूरी पर एक पिजड़े में कैद एक शेर खड़ा हुआ है। शेर को देखकर भय के कारण से वे वहाँ से भाग जाना चाहते हैं कि तभी उनके कानों से शेर की आवाज टकराती है। ''अरे भाई ! कृपया रुक जाओ, भागकर मत जाओ। किसी भी तरह से मुझे इस कैद से मुक्त कर दो। मैं तुम्हारा एहसान जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा।''

शेर की याचना भरी विनती सुनकर वे दोनों असमंजस में पड़ गये। दोनों आपस में विचार-विमर्श करने लगे। लम्बू की तरफ देखते हुए छोटू बोला ह्न ''कहो क्या विचार है ? इसे मुक्त किया जाय या नहीं ?''

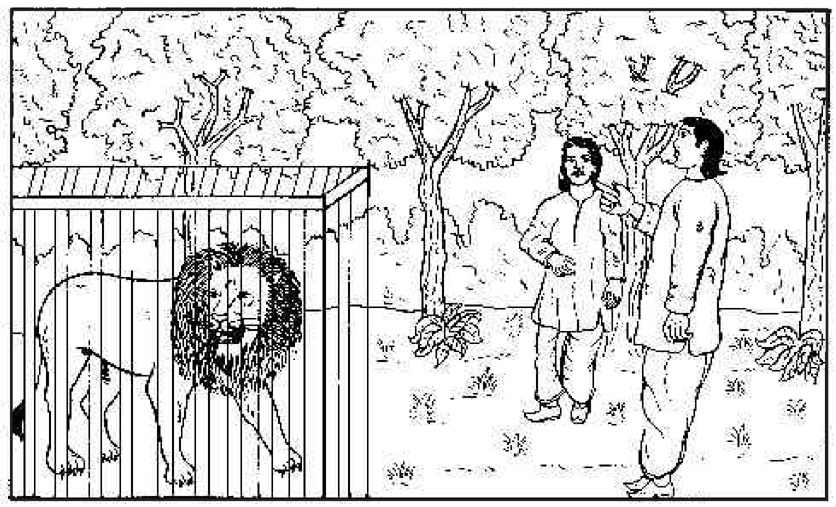

व्यर्थ की झंझट मोल लेने से क्या फायदा ? मुक्त होने के बाद कहीं ये हमें मार डाले तो ?'' लम्बू ने अपनी आशंका व्यक्त की।

लम्बू की बात सुनकर शेर गिड़गिड़ाया ह्न ''नहीं, मेरे भाई ! ऐसा मत कहो। अपना उपकार करनेवाले के साथ ऐसा बर्ताव मैं तो क्या, बल्कि कोई दुष्ट से दुष्ट प्राणी भी नहीं करेगा।''

शेर की विनती सुनकर वे दोनों गहरी चिन्ता में पड़ गये। कुछ देर सोचने के बाद छोटू बोला ह्न ''चलो परोपकार कर लेने में हर्ज ही क्या है ?

लम्बू बोला ह्न ''मित्र ! हम यहाँ किसी पर का उपकार करने नहीं निकले हैं, हम तो धन कमाने निकले हैं और ऐसे हिंसक प्राणी का उपकार करने से फायदा भी क्या ?

लम्बू की बात सुनकर शेर फिर गिड़गिड़ाया ह्न ''नहीं मेरे भाई ! ऐसा मत कहो। मेरे ऊपर दया करो। प्राणीमात्र के ऊपर दया करना तो प्रत्येक मानव का धर्म है। यकीन करो मैं भी तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि आगे से किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूँगा।

शेर की बात सुनकर अब की बार छोटू ने आशंका व्यक्त की ह्न ''तुम किसी की भी हिंसा नहीं करोगे, यह बात तो ठीक; परन्तु फिर भी तुम अपना पेट कैसे भरोगे ?''

''पेट ! अजी पेट भरने की क्या है, किसी भी तरह भर लेंगे। यहाँ जंगल में पशुओं की कमी नहीं है। यहाँ पर दिन में एक न एक पशु तो अपनी मौत भी मरता ही रहता है। मैं उन अपनी मौत मरे पशुओं को खाकर ही अपना पेट भर लूँगा। स्वयं किसी पशु को मारकर नहीं खाऊँगा।'' शेर ने कहा।

''और किसी दिन आपको ऐसा पशु भी प्राप्त नहीं हुआ तब ?'' लम्बू ने आशंका व्यक्त की।

''उस दिन मैं उपवास कर लूँगा, यकीन रखो अब मैं इस बात को अच्छी तरह से समझ गया हूँ कि अहिंसा का पालन करके ही प्रत्येक प्राणी सुखी हो सकता है। भला दूसरों को दु:खी करके भी कभी कोई प्राणी सुखी हो सका है ? जिसतरह हम सुख चाहते हैं, उसीतरह प्रत्येक प्राणी भी सुखी होना चाहता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे साथ कोई खोटा बर्ताव न करे तो हमें भी चाहिए कि हम भी किसी के साथ खोटा बर्ताव न करें। हिंसा से तो मेरा विश्वास ही उठ चुका है। अहिंसा ही परम धर्म है। मैं इस समय तुम्हारे सामने ही प्रतिज्ञा करता हूँ कि ह्न ''अब से मैं किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूँगा।'' शेर अत्यन्त ही दृढ़तापूर्वक बोला।

शेर की बात सुनकर छोटू लम्बू की तरफ उन्मुख होते हुए बोला ह्न ''चलो हमारे कारण यदि कोई प्राणी धर्मसाधन के मार्ग में लगता है, तो उसका उपकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए।'' इतना कहते हुए छोटू पिंजड़ा खोलने के लिए आगे बढ़ा तो लम्बू ने उसे रोकते हुए कहा ह्न ''ठहरो! इतनी उतावली में कोई भी निर्णय ले लेना ठीक नहीं। कहीं ऐसा न हो कि हम अपने हाथों से ही स्वयं की जान खतरे में डाल दें। इस बात की क्या गारण्टी है कि शेर का हृदय वास्तव में परिवर्तित हो चुका है। यदि हम मारे गये तो हमारे बाल-बच्चों पर क्या बीतेगी ? हम कोई गृह-त्यागी तो हैं नहीं कि जिनके मरने के पीछे कोई रोनेवाला न हो।''

''ओ हो लम्बू ! अपने भाग्य पर भी तो कुछ भरोसा रखो। और फिर हम तो किसी का उपकार करने ही जा रहे हैं, किसी का अपकार तो कर नहीं रहे। परोपकार का फल तो सदैव मीठा ही रहता है न ! और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि कोई किसी को मार ही नहीं सकता। यह शेर हमारे आयुकर्म का हरण करने से तो रहा।'' छोटू ने कहा और आगे बढ़ते हुए पिंजरे का दरवाजा खोल दिया।

अगले ही पल शेर पिंजरे के बाहर हो चुका था। छोटू और लम्बू जब चलने लगे तो शेर रोबदार आवाज में गुर्राया ह्न ''रुक जाओ, जाते कहाँ हो ? मुझे जोरों की भूख लगी है। मैं तुम्हें खा जाना चाहता हूँ।''

लम्बू तो डर के मारे थर-थर काँपने लगा, परन्तु छोटू साहस बटोरते हुए पूँछ बैठा ह्न महाशय ! आप यह क्या कह रहे हैं ? अभी कुछ देर पहले तो आप कैसी बातें कर रहे थे और अब कैसी बातें कर रहे हैं ?

भयंकर अट्टहास करते हुए शेर दहाड़ा ह्न तुम अभी-अभी कुछ देर पहले कह रहे थे न, कि कोई किसी को मार ही नहीं सकता। तो क्या तुमने मुझे भी इतना कमजोर समझ लिया था। मैं तुम्हें अभी मारकर खाऊँगा और तुम्हारी इस बात को झूठा साबित कर दूँगा कि कोई किसी को मार ही नहीं सकता। शेर की बात सुनकर दोनों हतप्रभ रह गये।

''लेकिन सरकार आप तो बड़े ही शक्तिशाली हैं आप तो चाहे किसी को भी मारकर खा सकते हैं। यह बात हमने आप जैसे शक्तिशाली प्राणियों के लिए थोड़े ही कही थी।'' लम्बू ने मक्खन लगाने की कोशिश की।

नहीं, उस समय तुमने ऐसा उल्लेख नहीं किया था और इसलिए अब मैं तुम्हें खाकर ही रहूँगा।

''नहीं उस समय ही ऐसा उल्लेख करना चाहिए था।'' कहते हुए शेर झपट्टा मारने को उद्यत हुआ।

''कुछ देर रुकिये न महाराज ! क्यों न इस बात का फैसला किसी तीसरे प्राणी से ही करा लिया जाये कि हम आपके द्वारा मारे जाने के काबिल हैं भी या नहीं।

शेर ने मन ही मन सोचा ह्न ''क्या हर्ज है, वैसे भी यहाँ पर मेरे खिलाफ फैसला देनेवाला है ही कौन ? और फिर वह बोला ह्न चलो ठीक है, ऐसा ही कर लेते हैं। इतना उपकार हम तुम पर भी किये देते हैं।''

उसी समय एक सियार वहाँ से गुजरता हुआ उनके द्वारा देखा गया। उन्होंने सियार को अपने पास बुलाया और सारी बातों से अवगत कराया। सियार बहुत ही चतुर प्राणी निकला। वह अपनी बुद्धि का भरपूर उपयोग करते हुए बोला ह्न ''पहली बात तो मेरी समझ में यही नहीं आ रही कि हमारे जंगल के इतने बड़े राजा इस छोटे से पिंजड़े में कैद रहे ही कैसे होंगे ? हमारे इतने बड़े राजा को इस छोटे से पिंजड़े में कैद बताना, यह तो हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है।''

सियार की बात सुनकर शेर सचमुच ही लज्जा का अनुभव करने लगा। उसने इस बात को स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक समझा कि वह वास्तव में एक छोटे से पिंजड़े में कैद नहीं था। इसलिए वह सियार से बोला ह्न''सियार! पिंजड़ा तो बड़ा ही है। मैं कोई बेवकूफ थोड़े ही हूँ, जो छोटे से पिंजड़े में कैद हो जाऊँ।''

''नहीं महाराज ! बड़े तो आप ही हैं। पिंजड़ा तो छोटा ही है।'' अनजान बनने का अभिनय करते हुए सियार बोला।

''नहीं सियार ! ऐसी बात नहीं है, देखो मैं इसमें आसानी के साथ खड़ा रह सकता हूँ।'' कहते हुए शेर पिंजड़े में प्रवेश कर गया। शेर ने जैसे ही पिंजड़े में प्रवेश किया, सियार ने तत्काल पिंजड़े का दरवाजा बन्द कर दिया और सांकल लगा दी। अब शेर पुनः कैद हो चुका था। तब दोनों व्यक्ति और सियार शेर की हँसी उड़ाते हुए पूछ बैठे ह्न क्यों महाशय ! क्या अब भी इस बात को स्वीकार नहीं करोगे कि ''कोई किसी को मार ही नहीं सकता।''

बेचारा शेर ! खून का घूंट पीकर रह गया। तब सियार से विदा लेते हुए दोनों व्यक्ति बोले ह्न ''अच्छा सियार भाई ! हम चलते हैं ह्न जयजिनेन्द्र।''

सियार ने भी जयजिनेन्द्र कहा और सब अपनी-अपनी राह चल दिये। ◻

दो प्यासे कौए

जंगल में पेड़ की डाल पर बैठा धोला कौआ बहुत ही हताश नजर आ रहा था। उसके चेहरे से गहरी निराशा के भाव झलक रहे थे। वह काफी बेचैनी का अनुभव कर रहा था कि तभी वहाँ पर उड़ता हुआ काला कौआ आ पहुँचा। वह उसके पास बैठते हुए बोला ह्न ''कहो भाई धोलू ! किस चिन्ता में डूबे हुए हो ?

''प्यास के मारे मरा जा रहा हूँ मित्र !'' ह्न धोलू ने कहा।

''प्यास ! मित्र प्यास तो मुझे भी जोरों की लगी है, परन्तु करें क्या ? यहाँ तो कहीं दूर-दूर तक पानी नजर ही नहीं आता।'' कालू ने भी वही समस्या प्रगट की।

''पर मित्र ! इसतरह से बैठे रहने से कैसे काम चलेगा ? अपने आप हमारे पास तो पानी आनेवाला है नहीं, पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा। चलो पानी की तलाश करते हैं'' ह्न समस्या का समाधान सुझाते हुए कालू ही आगे बोला।

धोलू कौआ ने कुछ समझदारी की बात करते हुए कहा ह्न ''पुरुषार्थ ! तुम पुरुषार्थ की बात करते हो, मैंने तो चप्पा-चप्पा छान मारा; परन्तु कहीं भी पानी नहीं मिला, उल्टे थकान ही हाथ लगी। अच्छा होता यदि इतना पुरुषार्थ शुद्धात्मा का अनुभव करने में लगाया होता तो आत्मा का उद्धार ही न हो जाता। परद्रव्यों में अपना पुरुषार्थ चलता ही कहाँ है ? परद्रव्य का परिणमन तो परद्रव्य के अनुसार होता है, अपनी है; उनमें अपना पुरुषार्थ नहीं चलता। जहाँ पुरुषार्थ चलता है वहाँ तो किया नहीं और व्यर्थ पसीना बहाया।

''क्या होनहार-होनहार की रट लगा रहे हो ? यदि होनहार ही के भरोसे बैठे रहे तो प्यास के मारे ही मर जाओगे।'' कालू कौए ने तीखा प्रहार किया।

तब बहुत ही गम्भीर होकर धौलू कौआ बोला ह्न ''यदि होनहार में मरना ही लिखा है तो उसे भी कौन टाल सकता है ? कौन ऐसा है जो मरना चाहता हो ? परन्तु एक न एक दिन मरना तो सभी को पड़ता है न कालू ! सच्ची बात तो यही है कि जीवन और मरण भी परद्रव्य की अवस्थाएँ हैं और इसमें आत्मा का पुरुषार्थ नहीं चलता। जीवन-मरण, संयोग-वियोग ह्न ये सब तो होनहार ही के आधीन हैं, इसमें अपना (आत्मा का) पुरुषार्थ कैसा ?

''तो क्या तुम यही मानते हो कि पुरुषार्थ नाम की कोई चीज ही नहीं है ?'' कालू कौआ आश्चर्य चकित होते हुए बोला।

''नहीं, यह बात नहीं है; परन्तु यह बात जरूर है कि स्वयं का पुरुषार्थ स्वयं में ही चल सकता है। परद्रव्यों में अपना पुरुषार्थ नहीं चलता। यह शरीर भी परद्रव्य है। अत: शरीर के कार्यों में भी अपना पुरुषार्थ नहीं चल सकता। जब एकक्षेत्रावगाही शरीरादि के फेर-बदल में हमारा पुरुषार्थ नहीं चलता हो तो जो प्रगट भिन्न परद्रव्य हैं, उनमें तो पुरुषार्थ चल सकने की बात ही कहाँ है? वस्तुत: बात तो यह है कि परद्रव्यों की अवस्थाएँ तो जैसी होनी होती हैं, वैसी ही होती हैं। वे अपने स्वकाल में स्वयं उन द्रव्यों से ही होती हैं, उनमें अपने (योग-उपयोग) तो मात्र निमित्त ही बनते हैं।

अब तुम्हीं देखो न ! पानी को प्राप्त करने के लिए मैंने कोई कम पुरुषार्थ तो किया नहीं, फिर भी होनहार में पानी प्राप्त होने का योग नहीं था, सो ही हुआ। जब प्राप्त होने का योग हो तभी तो वह प्राप्त होवे न ! अन्यथा अपनी इच्छाओं से और प्रयत्न से क्या होता ?

जो परद्रव्य की अवस्थाएँ यदा-कदा अपनी इच्छा के अनुकूल हो जाया करती हैं, उसमें भी वास्तव में विचार किया जाय तो अपना वर्तमान का पुरुषार्थ (प्रयत्न) तो निमित्त कारण भी नहीं है। उसमें भी अपना पूर्वकृत पुण्य का उदय निमित्त कारण है। इसी से यह बात सिद्ध होती है कि कभी-कभी वर्तमान में पुरुषार्थ किए बिना भी अपनी इच्छाओं के अनुसार कार्य हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अथक प्रयत्न (पुरुषार्थ) करने पर भी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं हो पाता। इससे तो यही सिद्ध होगा कि मनवांछित कार्य की सिद्धि पुण्योदय के निमित्त से ही होती है। वर्तमान पुरुषार्थ से नहीं।

और अपने पुण्य का उदय तभी संभव है, जबकि पूर्व में हमने पुण्य-परिणाम किये हों। त्याग, संयम, नैतिकता, ईमानदारी आदि के भाव किये हों और इसप्रकार अन्ततः तो यही सिद्ध होता है कि अपना वास्तविक पुरुषार्थ तो स्वयं के परिणामों (विचारों) के अन्दर ही चल सकता है।

चाहे जैसी परिस्थिति होने पर भी अपने परिणामों को बिगड़ने न देना, समताभाव कायम रखते हुए अपनी मान्यता को उल्टी न होने देना तथा अपने उपयोग को अपने शुद्धात्मा के अनुभव में लगाने का प्रयत्न करते रहना ही अपना वास्तविक पुरुषार्थ है।''

धौलू कौए ने एक लम्बा-सा व्याख्यान देने के पश्चात् पूछा, परन्तु कालू कौए का तो प्यास के मारे बुरा हाल हो रहा था; इसलिए आगे कुछ भी कहने अथवा पूछने के बजाय वह सीधे अपनी मतलब की बात पर आते हुए बोला ह्न ठीक है, ठीक है; इस विषय पर फिर कभी विचार करेंगे। अभी तो प्यास के मारे बुरा हाल है। कुछ न कुछ तो पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा, कोई मरना थोड़े ही है। चलो, तुम भी मेरे साथ चलो। कहीं न कहीं तो पानी मिल ही जायेगा।

यद्यपि धौलू कौए को अपने ज्ञान और श्रद्धान पर तो पूरा भरोसा था कि पानी मिलना होगा तो ही मिलेगा और जब मिलना होगा तभी मिलेगा; किन्तु चारित्र में तो कचास (कमजोरी) थी ही। अतः, वह तो कालू कौए के साथ जाने के लिए तैयार हो गया। बोला ह्न चलो पुण्योदय होगा तो कहीं न कहीं मिल ही जायेगा। प्यास भी तो नहीं सही जाती।''

वे दोनों इस भयंकर गर्मी में पानी की तलाश में चारों ओर निगाह दौड़ाते हुए रेगिस्तान के ऊपर उड़ते जा रहे थे। उड़ते-उड़ते आखिर उन्हें एक कुए की पाल पर रखे एक घड़े के अन्दर पानी के दर्शन हो ही गये। पानी तो मिला, परन्तु उस घड़े के अन्दर पानी बहुत ही कम मात्रा में था। अपनी चोंच को पानी तक पहुँचा पाने में वे अपने आपको असमर्थ पा रहे थे। अन्ततः कालू को एक युक्ति सूझी। उसने अपनी युक्ति धौलू को समझायी।

और अब वे दोनों आसपास से कंकड़ उठा-उठाकर उस घड़े के अन्दर डालने लगे। घड़े के अन्दर ज्यों-ज्यों कंकड़ बढ़ते जा रहे थे, त्यों-त्यों घड़े के अन्दर का पानी ऊपर आता जा रहा था। पानी प्राप्त होने की संभावना से खुशी तो धौलू कौए को भी हो रही थी, पर कालू कौआ तो बहुत ही ज्यादा खुश हो रहा था। वह बोला ह्न देखा ! पुरुषार्थ से क्या नहीं हो सकता ?''

''पानी की प्राप्ति पुण्योदय के निमित्त से ही हो सकेगी। अभी तक तो हमारे पाप का उदय ही चल रहा था और अभी भी चल रहा है। जब पुण्य उदय आयेगा, तभी पानी की बूँद मुँह के अन्दर तक जाकर हमारी इच्छा को तृप्त कर सकेगी।'' धौलू ने अपना सिद्धान्त बताया।

''हाँ..........तुम भले ही ऐसा कह लो, परन्तु उस क्षण की भी अब कौन-सी देरी रह गयी है।'' कालू बोला।

दोनों बातें करते-करते कंकड़ डाल ही रहे थे कि दूर से आते हुए घड़े के मालिक ने कौओं को जब घड़े के अन्दर पत्थर डालते देखा, तो वह क्रोधित

हो उठा। वह अन्दर ही अन्दर बड़बड़ाया ह्न ''बड़ी ही मुश्किल से तो इस गहरे कुए के अन्दर से पानी निकाल पाया हूँ और वह भी इन दुष्टों ने गन्दा कर दिया।'' क्रोधित होकर उसने एक बड़ा-सा पत्थर कौए की तरफ दे मारा।

संयोग की बात ! धौलू कौआ तो पत्थर की मार से बच गया और पेड़ की एक डाल पर जाकर बैठ गया; परन्तु कालू कौआ पत्थर की चपेट में आ गया। कुछ ही देर तक फड़फड़ाते रहने के बाद उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

धौलू कौए को अपने साथी कौए की मृत्यु पर काफी दु:ख हो रहा था, परन्तु इससे भी ज्यादा दु:ख उसको इस बात का हो रहा था कि ''परद्रव्यों में अपना पुरुषार्थ चल सकता है'' इस उल्टी मान्यता को अपने साथ में ही लेकर कालू परलोक को गमन कर गया।

कुछ ही देर बाद घड़े का मालिक पानी भर कर चला गया तो धौलू ने देखा कि वहाँ आसपास कुछ पानी कुए के पाट के पत्थरों के छोटे-छोटे गढ्ढों में भर गया है। उसने उदास मनपूर्वक अपनी प्यास बुझाई और संसार के वास्तविक स्वरूप पर विचार करते हुए वह अपने निवासस्थान की तरफ उड़ चला। □

कोयल, कौआ और लोमड़ी

एक पेड़ पर बैठा सुर सम्राट कौआ एक गीत गा रहा था, जो इसप्रकार हैह्न

''गीतों में मेरे वो जादू, हर दिल खुशी से खिल जाये।
आवाज में मेरी वो तड़फन, पत्थर का दिल भी पिघल जाये॥
ऐसा क्या कुछ है इस जग में, जिसको ना हम तुम कर पायें।
आशमाँ के सितारे तोड़ सकें, रेती से तेल चुरा लायें॥...''

एक तो कानों को चुभनेवाली कर्करा भौड़ी आवाज और उपहासजनक सर्वथा मिथ्या बात।

सामने के ही पेड़ पर बैठी हुई तत्त्वज्ञानी कोयल से रहा न गया। वह उड़ती हुई उस सुर सम्राट कौए के पास पहुँची और बोली ह्न ''तुम अपना यह बेसुरा राग अलापना बन्द करो। इसे सुनकर लोग तुम्हारी हंसी करेंगे।''

कोयल की बात कौए को चुभ गई। वह गला फाड़कर चिल्लाया ह्न ''तुम मुझे बीच में टोकने वाली कौन होती हो ?'' तब कोयल बोली ह्न ''बस, तुम मुझे अपनी हितैषी समझ लो।''

''बड़ी आई हितैषी बनने ! यही कहो न कि मेरा मधुर गाना सुनकर तुम्हें ईर्ष्या होने लगी है। तुम मेरी बराबरी का मधुर गीत नहीं गा सकती।'' क्रोधित होते हुए कौआ बोला।

''महाशय, आपको भ्रम हो गया है। आपकी आवाज तो मधुर है ही नहीं, परन्तु आपकी मान्यता भी ठीक नहीं है। आप आसमान के सितारे और रेत में से तेल प्राप्त नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि आत्मा परद्रव्य के कार्य बिल्कुल भी नहीं कर सकता। प्रत्येक कार्य अपने स्वयं की योग्यता से व अपने स्वचतुष्टय से ही होते हैं। एक द्रव्य का कार्य दूसरा द्रव्य

किंचित् भी नहीं कर सकता। क्या तुम समझते हो कि अभी तक यह गाना गाने का कार्य तुम स्वयं कर रहे थे ?

कोयल की बात सुनकर आश्चर्यचकित होते हुए कौआ चिल्लाया ह्न "मैं नहीं गा रहा था तो क्या तुम गा रही थी। ? पागल कहीं की, कहाँ से चली आयी यहाँ पर ? चली जाओ यहाँ से, मुझे ऐसे हितैषियों की जरूरत नहीं है।"

"ओ हो महाशय ! मैं भी नहीं गा रही थी और तुम भी नहीं गा रहे थे। वस्तुत: तो बात यह है कि यह गाने की क्रिया तो भाषावर्गणारूप पुद्गल की परिणति है, तुम तो मात्र गाने की इच्छापूर्वक अपने योग और उपयोग को ही कर रहे थे। इनके निमित्त से गीत के रूप में तो भाषावर्गणायें ही परिणमित हो रही थीं और भाषावर्गणायें तो पुद्गल की ही अवस्था हैं। अरे ! तुम्हारा ये गीत तो क्या ? तुम्हारा ये शरीर भी पुद्गल की ही अवस्था है। और तुम

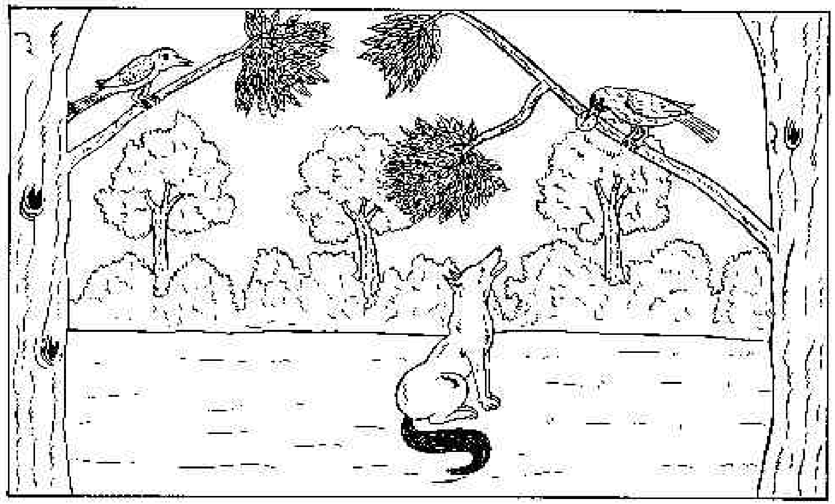

र यह पुद्गल

सुनो ! कभी-

को नहीं कर

आधीन नहीं

उसी काल में

ती कि ऐन -

वयं गाती रहो

सकती हो ह्न

के उपदेश से बचने के उद्देश्य से वहाँ से उड़ गया।

वह सुर सम्राट कौआ उड़ता हुआ जा रहा था कि तभी उसकी दृष्टि

रोटी के टुकड़े पर पड़ी। नीचे उतरकर रोटी का टुकड़ा उसने अपने मुँह में उठाया और फिर से उड़ चला। उड़ते-उड़ते दूर जंगल में जा पहुँचा और रोटी खाने के लिए एक पेड़ पर बैठ गया। संयोग वश उसी समय वह कोयल भी उसी दिशा में उड़ती हुई कौए के पास वाले दूसरे पेड़ पर बैठ गई। कौए के मुख में रोटी देख भोजन की तलाश करती हुई इधर-उधर घूम रही लोमड़ी भी वहाँ आ पहुँची। वह चालाक और धूर्त तो थी ही। कौए की ओर उन्मुख होकर बोली ह्न "अहो सुर सम्राट कौए ! मैं तो कई दिनों से आपका गाना सुनने के लिए तरस रही थी , आखिर आज आपके दर्शन हो ही गये। मानो मेरे भाग्य ही खुल गये। शीघ्र ही कोई बढ़िया-सा गीत सुनाओ न !

इसी बीच कौए की नजर सामने बैठी हुयी कोयल पर पड़ चुकी थी।

वह भी इधर ही देख रही थी। अपनी ढ़ेर सारी प्रशंसा सुनकर कौआ फूला नहीं समा रहा था। उसकी इतनी प्रशंसा और वह भी उसकी आवाज की निंदक कोयल के सामने। कौए के तो मानों भाग्य ही खुल गये। वह अपनी सुध-बुध खो बैठा और एक विचित्र-सी मुस्कराहट बिखेरते हुए कोयल की

तरफ देखने लगा। मानों मन ही मन कहा रहा हो ह्न ''देखा तुमने ! यहाँ मेरी आवाज के प्रशंसक कितने हैं ? क्या तुम्हारे गीत की भी कोई ऐसी प्रशंसा करता है।

पैनी पकड़वाली तत्त्व सम्राज्ञी कोयल शीघ्र ही समझ गयी कि लोमड़ी कौए को मूर्ख बनाना चाहती है, अतएव वह जोर से चिल्लायी ह्न ''कौए भाई ! तुम गाना हरगिज नहीं गाओ, यह तुम्हारी झूठी प्रशंसा करके तुम्हारी रोटी छीनना चाहती है।''

परन्तु कौए महाशय तो कोयल की पूरी बात सुनने से पहले ही लगे गाने, जैसे ही कौए ने गाने के लिए मुँह खोला, रोटी का टुकड़ा जमीन पर गिर गया। रोटी जमीन पर गिरते ही लोमड़ी उसे उठाकर दूर जंगल में भाग गई।

अब तो सुर सम्राट का चेहरा देखने लायक था। तत्त्वसम्राज्ञी उसकी तरफ देखती हुई बोली ह्न ''यद्यपि तुम्हारी इच्छा रोटी खाने की तो बहुत थी, परन्तु रोटी की योग्यता तुम्हारे पेट के अन्दर तक पहुँचने की होती, तभी तो वह तुम्हारे पेट तक पहुँच पाती न ! गीत गाने की इच्छा तो तुम्हारी बहुत थी पर शब्दों की योग्यता गीतरूप से परिणमित होने की होती, तभी तो तुम गीत गा पाते न ! खैर ! यह बताओ कि क्या अब भी तुम इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हो कि ''प्रत्येक द्रव्यों की परिणति स्वतंत्र है।''

सुर सम्राट के पास तत्त्वसाम्राज्ञी की बातों का कोई जबाब ही नहीं था। कुछ देर तक तो वह वहाँ गुमसुम बैठा-बैठा उस कोयल के कहने को न मानने पर पछताता रहा। बाद में कोयल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हुआ वहाँ से उड़ गया। तब तत्त्वसाम्राज्ञी ने भी अपनी राह पकड़ी। □

तत्त्वज्ञ बनिया और नास्तिक दर्जी

एक दर्जी का बेटा अपनी दुकान पर बैठे-बैठे कपड़े सी रहा था कि तभी वहाँ पर उसका मित्र जो कि बनिये का बेटा था, आते हुए बोला ह्न ''कहो मित्र! क्या हाल-चाल हैं ? क्या हो रहा है ?''

''सब ठीक-ठाक है, कपड़े सी रहा हूँ; आओ बैठो !'' दर्जी का बेटा सहजभाव से बोला।

बात-बात में तत्त्व की बातें करने लगता था, पात्र और अपात्र का भी उसे विवेक नहीं रह पाता था; सो अपनी आदत के अनुसार पास ही पड़ी हुई बैंच पर बैठते हुए बोला ह्न ''क्या यह कपड़े सीने का कार्य आत्मा करता है ? आत्मा तो कुछ भी नहीं कर सकता, वह तो सिर्फ करने का राग कर सकता है अथवा सिर्फ ज्ञान ही कर सकता है। कपड़े की जो सिलनेरूप अवस्था हो रही है, वह तो स्वतंत्रपने उस कपड़े से ही हो रही है। यहाँ तक कि सिलाई मशीन से भी नहीं हो रही है। कपड़े का परिणमन स्वतंत्र है, सिलाई मशीन का परिणमन स्वतंत्र है, तुम्हारे हाथ का परिणमन स्वतंत्र है, तुम्हारे पैरों का परिणमन स्वतंत्र है, तुम्हारे राग का (इच्छा) का परिणमन भी स्वतंत्र है और तुम्हारे ज्ञान का परिणमन भी स्वतंत्र है, प्रत्येक परमाणु स्वतंत्र है, सभी अपने-अपने कारण से हैं।

दर्जी का बेटा नास्तिक तो था ही, उसे आत्मा, परमात्मा और वस्तु की स्वतंत्रता के सिद्धान्त से क्या प्रयोजन ? लेकिन फिर भी बनिये की बातों को सुनने का नाटक करते हुए अच्छा, अच्छा करता जा रहा था और कपड़े भी सीते जा रहा था।

बनिया कहे जा रहा था ह्न ''चूँकि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है; इसलिए कोई

किसी का भला-बुरा भी नहीं कर सकता, मात्र भला-बुरा करने का भाव कर सकता है और उन भावों का फल तो उसे भुगतना पड़ता है। सामने वाले का भला अथवा बुरा होना तो उसके स्वयं के पुण्य अथवा पाप के उदय के आधीन ही है। कोई किसी को कष्ट नहीं पहुँचा सकता। कोई किसी को सुखी-दु:खी नहीं कर सकता। अहाहा ! कितनी स्वतंत्रता है वस्तु व्यवस्था में।''

दर्जी की दुकान के पास से ही होकर एक हाथी रोजाना तालाब की तरफ पानी पीने जाया करता था। दूर से ही अपनी दुकान की तरफ हाथी को आता हुआ देखकर आज दर्जी के मन में एक शरारत सूझी। दर्जी का बेटा जब सिलाई को छोड़कर इधर-उधर से कुछ ढूंढने लगा तो बनिये ने भी अपनी बात कहना बन्द कर दी।

सदा की ही भांति जब दर्जी की दुकान के सामने से हाथी अपनी सूंढ़

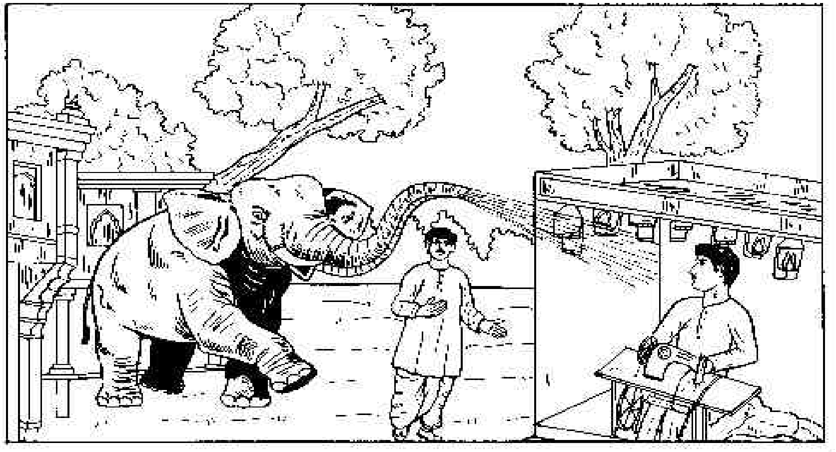

दर्जी ने मौका
ऐसी हरकत
हाथी को कष्ट
चूक करता तो

कुतर्क करते
को कष्ट नहीं
को जो कष्ट
हुआ है।''

''ओ हो ! पर मैंने यह भी तो कहा था कि यह आत्मा दूसरों को कष्ट पहुँचाने का भाव (परिणाम, विचार) तो कर सकता है और साथ ही यह भी तो कहा था कि अपने इन भावों का फल भी स्वयं को ही भुगतना पड़ता है।

अपने इस खोटे परिणाम के फल को भुगतने से अब तुम बच नहीं सकोगे। कभी न कभी तो इसका परिणाम (नतीजा) तुम्हें भुगतना ही पड़ेगा।'' बनिये ने गम्भीर होकर कहा। परन्तु दर्जी उपेक्षा करते हुए बोला ह्न ''देखा जायेगा।'' तब बनिये ने कहा ह्न ''देख लेना।''

आज अपने मित्र का ऐसा व्यवहार हाथी को बिल्कुल भी पसन्द नहीं आया। दर्द के मारे वह तिल-मिला उठा, परन्तु इस समय तो उसने धैर्य धारण कर लेना ही उचित समझा और मन ही मन इसका बदला लेने का भी निश्चय कर लिया तथा तालाब की तरफ रवाना हो गया।

दर्जी की दुकान को छोड़कर बनिया अपने घर के लिए रवाना हुआ ही था कि तभी तालाब की तरफ से आते हुए हाथी को देखकर, वह वहीं एक ओर खड़ा हो गया। उसे लगा जैसे उस समय हाथी बहुत ही गुस्से में है; क्योंकि वह अपनी सूंढ़ को ऊँचा किये बड़ी ही तेजी के साथ आगे बढ़ा चला आ रहा था और अगले ही कुछ क्षणों बाद उस बनिये के साथ-साथ

कई लोगों ने देखा कि हाथी ने अपनी सूंढ़ में भरा बहुत सारा कीचड़ दर्जी की दुकान तरफ उछाल दिया है। बनिये को समझते देर नहीं लगी कि हाथी ने

अपना बदला ले लिया है और दर्जी को अपने किए की सजा मिल गई है।

बनिया वापस दर्जी की दुकान पर गया तो देखता है कि दर्जी की सूरत रोनी-रोनी सी हो गयी है। उसके और उसकी दुकान के सारे कपड़े गन्दे हो चुके हैं। थोड़ा-सा कीचड़ दर्जी की आँखों में भी प्रवेश कर चुका लगता है, तभी तो वह अपनी आँखें भी मलने लगा है। उसकी ऐसी दशा देखकर बनिया मुस्कराते हुए बोला ह्र ''देख लिया।''

भोला बनने का अभिनय करते हुए उदासीपूर्वक दर्जी बोला ह्र ''मैंने तो हाथी के साथ मजाक ही किया था, उसे कोई कष्ट थोड़े ही पहुँचाया था।''

तब बनिया व्यंग्यपूर्वकबोला ह्र ''हाथी ने भी तुम्हारे साथ मजाक ही किया है, उसने भी तुम्हें कोई कष्ट थोड़े ही पहुँचाया है। कष्ट तो तुम्हारे स्वयं के ही पाप के उदय के कारण तुम्हें पहुँचा है।'' और इतना कहकर बनिया अपने घर की तरफ रवाना हो गया।

तुम्हें तो कुछ करना ही नहीं है

सर्वश्रेष्ठ मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, सुसंगति और श्रावक कुल जो दुर्लभ है, वहाँ तक तो तुमआ ही गई हो। अत: तुम तो निश्चिन्त होकर अपनी इसी दिशा में आगे बढ़ती रहो। तुम्हें सम्यग्दर्शन स्वयं आकर वरण करेगा। तुम्हें उसके पास नहीं जाना, वही तुम्हारी पर्याय में प्रगट होगा। अरे! तुम तो वह हो, जिसके दर्शन का नाम सम्यग्दर्शन है। वह तुम्हारे दर्शन करके कृतार्थ होगा। बस, तुम्हें तो मात्र स्वयं को जानना, स्वयं को पहचानना और स्वयं में ही जमना-रमना है। तुम्हें इसके सिवाय और कुछ करना ही नहीं है।

ह्र सुखी जीवन, पृष्ठ - **६२**

अपराध बोध

''जगह-जगह लिख रखा है :ह्र घड़े का कर्ता कुम्हार नहीं है, मकान को बनाने वाला कारीगर नहीं है, रोटी को बनाने वाली औरत नहीं है, हाथ को हिलाने वाला मनुष्य का आत्मा नहीं है ह्र यह सब तो पुद्गल की अवस्थाएँ हैं और इन सब अवस्थाओं का कर्ता पुद्गलद्रव्य है, जीव नहीं है। हूँ......यह भी कोई बात हुई!'' अपने सिर को एक विशिष्ट-सा झटका देते हुए तथा अपनी हथेली को एक विशिष्ट मुद्रा में घुमाते हुए मनोज बोला। अपनी बात को जारी रखते हुए वह आगे बोले जा रहा था ह्र ''क्या रोटी अपने-आप बन जाती है ? कुछ भी मत करो और चुपचाप बैठे रहो, क्या रोटी आ जायेगी अपने आप मुँह में ? मकान को बनाने वाला यदि कारीगर नहीं है, तब तो मकान अपने-आप बन जाता होगा ? क्या बुद्धू बनाने की

बातें हैं, कहते हैं खाने-पीने की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है, तो क्या शरीर खाता-पीता है ? स्वच्छन्द होने के लिए क्या-क्या सिद्धान्त घड़ रखे हैं इन लोगों ने।''

सामने खटिया पर लेटे वृद्ध एवं बीमार नानाजी को सम्बोधित करते हुए मनोज ने कहा ह्न ''देखा नानाजी ! खाओ-पिओ और मौज करो, क्या इस तरह हो जायेगा अपने आप मोक्ष ? यही तो कहना है उन लोगों का, जगह-जगह एक ही बात ह्न व्रत, तप आदि सभी शरीर की (जड़ की) क्रियाएँ हैं, इन क्रियाओं का कर्ता आत्मा नहीं है। हः हः हः............सस्ते में मोक्ष चाहते हैं वे लोग। हूँ................जहाँ देखो वहीं, यही बातें लिख मारी हैं, यह भी कोई साहित्य है ?

नानाजी ! चाहे भले ही आपको बुरा लगे, पर हमें तो ऐसा साहित्य पसन्द नहीं है। हमने तो ऐसे साहित्य के टुकड़े-टुकड़े करके फैंकने का संकल्प कर लिया है।

''चुप रह नालायक कहीं का, पापी !'' पलंग पर लेटे-लेटे नानाजी ने आवेश में आकर उठने की असफल कोशिश करते हुए चिल्लाकर कहा।

क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गयीं तथा मुँह से सफेद-सफेद झाग निकलने लगे। कंठ सूख गया, फिर भी भर्राई आवाज में उनका चिल्लाना जारी रहा ह्न ''तो तूने भी पाप कर डाला, जिस पाप की सजा मैं आज तक भुगत रहा हूँ।''

फिर अश्रुपूरित नेत्रों से निहारते हुए बोले ह्न ''बेटा ! तुमने नादानी में ना-समझी में एक बहुत ही बड़ा अपराध कर डाला है। शरीर की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है ह्न यह बात पूर्ण सत्य है। यह आत्मा कभी भी परद्रव्य की क्रिया नहीं कर सकता ह्न यही बात पूर्ण सत्य है बेटा !'' नानाजी अपनी बात सुनाते-सुनाते काफी भावुक हो उठे थे। अपने वृद्ध और अपाहिज

नाना की बात सुनकर मनोज की आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गयीं। वह सहम-सा गया। वह तो अब तक ऐसा समझ रहा था कि साहित्य को नष्ट करके उसने एक बहुत ही बड़ी बाजी अपने हाथ मार ली है, बहुत बड़ा पुण्य का कार्य सम्पन्न कर लिया है; पर यहाँ तो उसे इस कृत्य के लिए नानाजी ही पापी ठहरा रहे थे, जो स्वयं भी एक दिन इसी के पक्ष में थे।

इन्हें क्या हो गया ? ह्न यह सोचते-सोचते उसका जोश समाप्त हो गया। वह तो समझ रहा था कि मेरा करिश्मा सुनकर नानाजी मेरी प्रशंसा करेंगे, पर यहाँ तो बात उल्टी ही निकली। अब उससे आगे कुछ कहते ही नहीं बन पा रहा था। वह सीधा दिल्ली से यहाँ बम्बई में अपने नानाजी से मिलने आया था, क्योंकि उसके नानाजी लम्बे समय से लकवे की बीमारी से पीड़ित थे। आवश्यक हाल-चाल पूछने के बाद ही उसने अपना करिश्मा अपने नानाजी को सुनाना शुरू किया था, जिसे सुनकर उसके नानाजी बिफर पड़े थे।

उन्होंने कहा ह्न ''ओ, हो.......बेटा ! यह तूने क्या किया ? कई दिन पहले मैंने भी अपनी ना-समझी और दूसरों के बहकावे में आकर ऐसे ही सत्साहित्य को नष्ट करने का भयंकर पाप किया था'' ह्न यह कहते-कहते वे बेचैन हो गये, उनकी वाणी में पश्चाताप की पीड़ा स्पष्टरूप से झलक रही थी। वे आगे बोले ह्न ''बेटा! उस समय मेरे मन मस्तिष्क में भी ऐसे ही कुतर्क उठा करते थे। यदि कुम्हार न हो तो क्या घड़ा अपने-आप बन जायेगा ? पर, बेटा ! यह मेरी नादानी थी। उस समय मैं इस बात को कहाँ जानता था कि ये तो वस्तु के स्वरूप को ज्यों का त्यों बतानेवाली अनादिकाल से चली आ रही तीर्थंकर भगवन्तों की जिनवाणी की बातें हैं। ये तो ऐसी बातें हैं, जिनको समझ कर सच्चे हृदय से स्वीकार करने पर अनादिकाल से चला आ रहा जन्म-मरण का अभिशाप समाप्त हो जाता है।''

नानाजी एक लम्बी सांस खींचते हुए कुछ देर तक रुककर फिर बोले ह्न

''बेटा ! उस समय तो मैं भी तुम्हारी ही तरह बड़ी अकड़ और जोश के साथ कहा करता था कि यह इन्सान क्या नहीं कर सकता ? चाहे जो कुछ कर सकता है, आसमान से तारे तोड़कर ला सकता है, यह चाहे तो देखते ही देखते धन-धान्य के ढेर लगा सकता है; परन्तु बेटा ! यह सब मेरा भ्रम था और मेरा यह भ्रम उस समय टूटा, जब अचानक ही मेरा यह शरीर लकवे से ग्रस्त हो गया और मैं जहाँ खड़ा था वहीं पर धम्म से गिर पड़ा। उस समय मैं अपने शरीर को टस से मस नहीं कर सकता था।''

नानाजी अपनी कहानी सुनाते-सुनाते सचमुच ही उस घटना काल में पहुँच चुके थे। क्षण भर के लिए इसी से उनके चेहरे पर पीड़ा का भाव उभर आये थे। दु:खभरी आवाज में वे पुन: बोले ह्र ''उन दिनों मुझे अपनी आवाज पर बड़ा घमण्ड था; लेकिन उस समय मेरी आवाज भी लड़खड़ाने लगी थी, मैं अपनी सहायता के लिए दूसरों को पुकारना चाहता था; लेकिन मुझसे बोला ही नहीं जा रहा था।''

यह कहते-कहते नानाजी कुछ देर के लिए चुप हो गये, मानों वे अपने पूर्वकाल की स्मृति में खो गये हों। थोड़े संयत होते हुए वे पुन: बोले ह्र ''और बेटा ! उन्हीं दिनों से मुझे धीरे-धीरे यह विश्वास होने लगा कि वास्तव में यह आत्मा शरीर से लगाकर अन्य जितने भी परद्रव्य हैं, उन परद्रव्यों की क्रियाओं का कर्ता नहीं है। यह आत्मा जानने के सिवाय कुछ भी नहीं कर सकता, मात्र परद्रव्यों की क्रियाओं को करने का भाव कर सकता है। जब इसकी इच्छा के अनुकूल परद्रव्यों कि क्रियाएँ स्वयमेव सम्पन्न हो जाती हैं, तब अज्ञानी जीव उन द्रव्यों की क्रियाओं को करने का अभिमान करने लगता है।''

नानाजी अपने अनुभव की बात अपने नाती मनोज को सुनाने में तल्लीन थे और मनोज आश्चर्यमिश्रित जिज्ञासापूर्वक सुनने में तल्लीन था। इसी बीच

एक छह-सात वर्षीय लड़की ने चाय का प्याला हाथ में लिए कमरे में प्रवेश किया। लड़की मनोज के सामने चाय का प्याला रखकर चली गयी, पर उन दोनों में से किसी ने चाय की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। नानाजी अपनी बात लगातार जारी रखते हुए कहे जा रहे थे ह्र

''बेटा मुझे लकवा तो हुआ; पर मेरे लिए तो यह लकवा वरदान बन गया है, मेरे लिए तो यह लकवा मेरा मित्र साबित हुआ; क्योंकि इससे चलना-फिरना तक जब बंद हो गया तो दुकान आना-जाना भी सहज छूट गया और स्वाध्याय को सहज समय मिल गया। मैंने समयसार आदि ग्रन्थों का अनेक बार स्वाध्याय सुना एवं यथासम्भव स्वयं भी किया। इससे ही मुझे अपनी भूल का भान हुआ। यदि लकवा न हुआ होता तो क्या पता, पर-पदार्थों में कर्तृत्वबुद्धि का अभिमान टूट पाता या नहीं। मेरे शरीर में तो लकवा हुआ, पर मेरी आत्मा में मिथ्यात्वरूपी लकवे का अभाव हो गया। पर-कर्तृत्व का अभिमान टूटकर ज्ञातृत्वभाव प्रगट हो गया।

नानाजी ! अब मैं आपको यह वचन देता हूँ कि अब मुझसे इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी और मैं नियमित स्वाध्याय भी करूँगा। साथ ही साथ यह प्रण करता हूँ कि जबतक सैकड़ों की संख्या में जिनवाणी को प्रकाशित करवाकर घर-घर नहीं पहुँचा दूँगा, तब तक चैन की सांस नहीं लूँगा।'' मनोज नाना के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए पूर्ण दृढ़ता के स्वर में बोला।

मनोज की बात सुनकर नानाजी खुश हो गये। झुर्रियों से भरा उनका चेहरा खुशी से खिल उठा। आँखों में खुशी की चमक फैल गई। ऐसा लग रहा था जैसे अपने नाती से घर-घर जिनवाणी पहुँचाने का वचन प्राप्त कर नानाजी ने अपने आपको उस बोझ से हल्का कर लिया हो, जो पूर्व में उनने जिनवाणी नष्ट करके अपने सिर लिया था। अब वे अपने-आपको काफी हल्का महसूस कर रहे थे। ◻

प्रभाव

मेरा जिनके साथ अक्सर विवाद हो जाता था, वे महाशय थे ह्न एक तो मेरे ही बड़े भाई, जिन्हें मैं 'भैयाजी' कहकर पुकारता था तथा दूसरे समाज के पाँच छह व्यक्ति और थे, जिनमें एक सेठजी, एक पण्डितजी एवं एक नेताजी प्रमुख थे। वे भी थे तो स्वाध्यायी, पर थे सब परम्परावादी ही। अत: उनमें ज्ञान के बजाय, ज्ञान का मान अधिक था। मुझसे उनका विवाद का मुद्दा भी कोई एक न था, कई थे। पुण्य का मुद्दा, मिथ्यात्व अकिंचित्कर का मुद्दा, निमित्त-उपादान का मुद्दा, निश्चय-व्यवहार का मुद्दा आदि।

मेरी हिम्मत भी देखो, मैं अकेला और वे पाँच-छह फिर भी मैं उनके सामने डटा रहता। कारण यह था कि मुझे जिनवाणी पर पूरा भरोसा था, अपने स्वाध्याय एवं अध्ययन पर बड़ा विश्वास था। मैं अपनी प्रत्येक बात को सिद्ध करने के लिए ग्रन्थों के उद्धरण तो प्रस्तुत करता ही, साथ ही तर्क भी प्रस्तुत करता था।

मैं कहता ह्न ''पुण्य तथा उसका कारण शुभभाव दोनों मर्यादित हैं, नाशवान हैं। देखते ही देखते अच्छों-अच्छों का पुण्य अस्त हो जाता है। अत: जो नाशवान हो, उसका भरोसा किसप्रकार किया जा सकता है ? शाश्वत वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा ही है तथा उसके आश्रय से उत्पन्न होनेवाली वीतरागता भी शाश्वत है, सादि-अनन्त है। अरहन्त, सिद्ध भगवान इसके आगमसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।''

पुण्य के संबंध में मैं कहता ह्न ''रोग तो रोग ही है, रोग कभी निरोगता का कारण नहीं हो सकता। इसी तरह से शुभरोग भी (शुभभाव भी) राग ही है। राग कभी भी वीतरागता का कारण नहीं हो सकता। राग की रुचि रखकर

तथा उसका सेवन करते-करते वीतरागता किसतरह सम्भव है ? वीतरागता प्रगट करने का उपाय तो शुभभाव एवं उसके फल से भेदविज्ञान करना है। राग को भिन्न जानकर उदित होता हुआ ज्ञान ही वीतरागता का कारण है। ज्ञान भिन्न है, राग भिन्न है, ज्ञान स्वभावभाव है, राग विभावभाव है। विभावभाव कभी भी स्वभाव भाव का कारण नहीं हो सकता, ठीक उसीतरह, जिसतरह अग्नि शीतलता का कारण किसी भी तरह से नहीं हो सकती।

मिथ्यात्व के विषय में मेरा कहना था ह्न ''मिथ्यात्व (उल्टी मान्यता) महापाप है। मिथ्यात्व के रहते कभी भी विषयों का अभाव नहीं हो सकता। भले ही कषायों की मंदता हो जाये ह्न यह अलग बात है। कषायों की मंदता कोई धर्म नहीं, यह तो पुण्य (शुभभाव) है। कषायों की मंदता तो अन्य मतवालों के भी हो सकती है, परन्तु मिथ्यात्व के सद्भाव के कारण से उनके धर्म रंचमात्र भी नहीं हो सकता।

उल्टी मान्यता (मिथ्यात्व को) महान अहितकारी सिद्ध करने के लिए, मैं उन लोगों को एक छोटी-सी कहानी भी सुनाया करता ह्न

''एक सेठ के घर में एक बार कुछ रुपयों की चोरी हो गई; अब उस सेठ को यह भ्रान्ति खड़ी हो गई कि रुपये अवश्य ही पड़ौसी ने चुराये हैं। फिर क्या था; पड़ौसी से झगड़ा कर लिया, पड़ौसी से द्वेष हो गया; पड़ौसी एवं उसके परिवार वालों को अपने घर आने की रोक लगा दी। फिर भी चोरी होना तो जारी ही रहा, क्योंकि रुपये चुरानेवाला तो स्वयं उसका ही बेटा था।''

इसी तरह से अपने सुख-दु:ख का कारण तो स्वयं अपनी ही आत्मा है, परन्तु भ्रम से अपने सुख-दु:ख का कारण दूसरों को और दूसरों के सुख-दु:ख का कारण अपने को मान लिया। एक का कर्ता दूसरा को मान लिया

है। जैसा है वैसा न मानकर उल्टा मान लिया तो कैसे सुखी हो सकेगा ? सुखरूपी धन की चोरी तो होती ही रहेगी। शरीर को अपना मान लिया एवं शरीर की क्रियाओं को अपनी क्रियायें मान लीं तो शरीर के प्रति राग का अभाव कैसे होगा ? अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को स्वीकार करने के बजाय अपने आपको सर्वथा अशुद्ध ही मान लिया, राग-द्वेष एवं कषायों को ही अपना स्वरूप मान लिया तो राग-द्वेष एवं कषायों का अभाव कैसे हो सकेगा? परद्रव्यों से अपना सुख-दु:ख नहीं होता, वे तो मात्र निमित्त हैं और निमित्त अकिंचित्कर होते हैं, तथापि उसको कार्यकारी मानना यही मिथ्यात्व है, महापाप है।

इसतरह से मैं तरह-तरह से अपनी बात को सिद्ध करने के लिए तर्क प्रस्तुत करता। यह बात भी नहीं थी कि मेरे ये उक्त तर्क प्रभावहीन हों। तर्क तो प्रभावशाली ही थे, परन्तु मैं स्वयं प्रभावहीन था। २०-२२ वर्ष का नया-नया स्वाध्यायी और प्रभावहीन व्यक्ति की बात मानने के लिए कोई क्यों तैयार हो?

सभी बड़े-बड़े एवं प्रभावशाली सेठियों, पण्डितों तथा तपस्वियों का तो यह कहना था कि कथंचित् पुण्य उपादेय है, मिथ्यात्व अकिंचित्कर है; फिर उनके आगे भला वे मेरी बात मानने के लिए तैयार क्यों होते ? पचास-पचास साल के शास्त्राभ्यासी तो पुण्य और धर्म को एक ही कहते, तब मेरे जैसे कल परसों के स्वाध्यायी की बात को वे कैसे मान लेते ?

हम सबके भाग्योदय से हमारे गाँव में एक बहुत बड़े प्रभावशाली दिगम्बर मुनिराज का पदार्पण हुआ। बाहर में तो पुण्य के उदय से उनका बहुत प्रभाव था ही, पर अन्दर में भी वे पवित्रता के धनी थे। परमसत्य के आराधक और सत्य के ही उद्घोषक। रोजाना उनके व्याख्यान होने लगे। उनके व्याख्यानों में सम्मिलित होकर सभा में सबसे आगे बैठता; क्योंकि अब तो मैं भी

भाग्योदय से काफी प्रभावशाली बन चुका था। मेरे भैयाजी तथा वे अन्य महाशय भी, जिनके साथ पूर्व में मेरा अक्सर विवाद हो जाया करता था, वहीं आसपास बैठे हुए नजर आते। मुनिराज की अमृतवाणी खिरती...........।

''पुण्य नाशवान है, अशुभ राग की ही तरह शुभराग भी हेय है, वीतरागता ही उपादेय है। शुभभाव को धर्म मानना मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व महापाप है। निमित्त अकिंचित्कर है। जैनधर्म परीक्षा प्रधानी है। गुणों की पूजा है, भेष की पूजा नहीं। गुणों सहित भेष पूजनीय है। न तो देह वन्दनीय है, न ही कुल और न ही जाति। गुणों से हीन श्रावक और साधु की कोई वन्दना क्यों करे ? स्वयं गहराई से स्वाध्याय करो, तभी समझ में आयेगा। मुक्ति का मार्ग स्वावलम्बन का मार्ग है। इसमें किसी दूसरे की कृपा काम नहीं आती।''

उनकी यह अमृतवाणी सुनकर मेरा सीना गर्व से फूल जाता, चेहरा हर्षविभोर हो जाता; पर भैयाजी एवं उनके साथियों की आँखें कुछ नीचे

अवश्य ही झुक जातीं; क्योंकि वे अब तक मेरा व इन्हीं सब बातों का विरोध करते रहे थे, पर अब मुनिराज के सामने सहमति के रूप में उनकी गर्दन भी हिलती। धीमे-धीमे ही सही, पर हिलती अवश्य।

व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् एक दिन मैंने अपने भैयाजी से विनम्र शब्दों में पूछा ह्न ''क्यों भैयाजी ! सिद्धान्तों का स्वरूप समझ में आया ? मैंने प्रश्न पूछा, उस समय वे अन्य महानुभाव भी वहीं आसपास खड़े थे। मेरा प्रश्न सुनते ही वे भी अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए मेरे पास आ खड़े हुए और किंचित् हँसते हुए और सिर हिलाते हुए लगभग सभी एक साथ बोले ह्न''हाँ, आ गया, बिल्कुल सही बात, बिल्कुल सही बात। महाराज साहब बिलकुल ठीक कहते हैं। समझ में आ गया। वास्तव में समझ में आ गयी है ह्न ऐसा सिद्ध करने के लिए उनमें से एक महाशय बोले ह्न ''मजा आ गया।''

मैं उनके अन्तरंग को समझते हुए बोला ह्न ''आप लोग अपने स्वयं के निर्णय के आधार से ये नहीं कह रहे हो। मुनिराज के बाहरी प्रभाव को देखकर 'हाँ' में 'हाँ' मिला रहे हो, पर याद रखो ह्न जबतक स्वयं निर्णय नहीं करोगे और सबकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते रहोगे, तबतक तुम्हारी झोली से सुख दूर ही रहेगा। सच्चे सुख को तुम कभी भी प्राप्त नहीं कर सकोगे। अभी भी वक्त है, तुम स्वयं निर्णय करो।

मेरी बात को ठुकरा भी कैसे सकते थे ? क्योंकि अब तो मैं काफी प्रभावशाली बन चुका था। अपने जिले का कलेक्टर जो बन गया था।

वे बोले ह्न ''हाँ हम स्वयं निर्णय करेंगे। निर्णय तो स्वयं को ही करना पड़ेगा। दूसरों के आधार पर पड़े रहने से थोड़ी चलेगा। आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।''

''बहुत अच्छा'' ह्न कहते हुए मैं वहाँ से चलता बना।

जिज्ञासा

सेठ चेतनमलजी के जीवन में किसी भी बात की कमी नहीं थी, उन्हें सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। आर्थिक दृष्टिकोण से भी वे मालामाल थे। सुन्दर पत्नी, दो बच्चे, माता-पिता, काका-काकी, भाई-बहिन आदि सभी सम्बन्धियों का संयोग भी उन्हें प्राप्त था, फिर भी न जाने क्यों उन्हें संतोष नहीं था। सभी प्रकार की अनुकूलताओं के बावजूद भी उन्हें कहीं भी सुख नजर नहीं आता था। उन्हें ऐसा लगता था, जैसे कहीं किसी बात की जरूर कोई कमी रह गयी है। न मालूम क्यों उन्हें अपना यह भोगमय जीवन धीरे-धीरे नीरस लगने लगा था।

कभी-कभी तो उनके हृदय में बड़े अनोखे-अनोखे विचार उत्पन्न होने लगते थे। ऐसे-ऐसे विचार जो कि उनके जीवन में पहले कभी उत्पन्न ही न हुए थे।

आज भी वे ऐसे ही विचारों में उलझे हुए थे। वे सोच रहे थे ह्न ''आखिर यह सब क्या है ? इस दुनियाँ का क्या स्वरूप है। ये नये-नये मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली, हाथी, घोड़े, कीड़े-मकोड़े आदि प्राणी कहाँ से आते हैं और मरकर कहाँ चले जाते हैं। कोई तो लम्बी उम्र तक जीते हैं और कोई थोड़ी-सी उम्र में ही मर जाते हैं। कोई तो दु:खी दिखाई देते हैं और कोई सुखी दिखाई देते हैं। कोई जन्म से ही काले, कुबड़े, और रोगी हैं तो कोई जन्म से स्वस्थ एवं सुन्दर हैं। कोई जन्म से ही निर्धन है तो कोई जन्म से ही धनवान है। कोई दिन-रात मेहनत करते हैं फिर भी भरपेट भोजन नहीं जुटा पाते और कोई साधारण प्रयत्न में ही मालामाल हो जाते हैं। कोई एक अर्से तक तो सुखी दिखाई देते हैं और बाद में अचानक उनके ऊपर कई प्रकार के दु:ख आ पड़ते

हैं। किसी के साथ इसके विपरीत होता है। आखिर इन सब विषमताओं का क्या कारण है ?

यहाँ पर सबके रंग, रूप और शक्लें भिन्न-भिन्न हैं। सबके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। सबकी जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं। किसी में ज्ञान है तो किसी में ज्ञान नहीं है। ये विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे एवं घास-फूस वनस्पति आदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। इस सबका क्या कारण है ?

ये जितने भी प्राणी और पदार्थ हैं वे अपने-आप ही उत्पन्न और नष्ट होती हुई दिखती हैं। इस दुनिया के इर्द-गिर्द, ऊपर-नीचे, आजू-बाजू में क्या-क्या रहस्य भरे हुए हैं। इन सब बातों का सच्चा समाधान कहाँ से मिल सकता है ? क्या इस दुनियाँ की समस्त ही बातों का ज्ञान किसी को है भी या नहीं ?''

ऐसे ही विचारों में इस समय सेठ चेतनमलजी खोये हुए थे। इन्हीं सब बातों को सोचते-सोचते अचानक चेतनमलजी के मस्तिष्क में अपने बचपन के जीवन का एक दृश्य उभर आया, उस समय वे पाँच या छह वर्ष के बालक थे और अपने पिता के साथ पहली बार बैलगाड़ी में बैठकर मेले में जा रहे थे। बैलगाड़ी के अन्दर उनके पिताजी की दुकान का माल (सामान) रखा हुआ था; क्योंकि उनके पिताजी मेले में अपनी दुकान लेकर व्यापार करने के लिए जा रहे थे। बैलगाड़ी ऊबड़-खाबड़ जमीन और ककरीले पत्थरों से टकराकर चरर-मरर की आवाजें पैदा कर रहे थे। बैलगाड़ी के साथ चेतनमलजी के पिताजी पैदल चले रहे थे। बैलगाड़ी के आगे-पीछे दूर-दूर तक विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी पोषाकें पहने हुए हाथों में लाठियाँ एवं छुरी-तलवारें लिए तरह-तरह के लोग चले जा रहे थे।

उन लोगों को देखकर बैलगाड़ी में बैठै चेतनमल ने अपने पिताजी से पूछा ह्न ''पिताजी इतने सारे लोग कहाँ जा रहे हैं ?

''बेटा ये भी मेले में जा रहे हैं।''

''पिताजी ? ये लोग कहाँ से आ रहे हैं ?'' चेतनमल ने पुन: पूछा।

''बेटा भिन्न-भिन्न दिशाओं से लोग आ-आ कर मेले में इकट्ठे होते हैं। कोई कहीं से आ रहा है तो कोई कहीं से।''

मेले में जाकर चेतनमल ने सहज जिज्ञासावश फिर पूछा ह्न ''पिताजी ये सब यहाँ कितने दिन रुकेंगे ?''

''बेटा ! कोई एक दिन रुकेगा, कोई दो दिन तो कोई तीन दिन। अधिक से अधिक चार दिनों के मेहमान हैं सब। चार दिनों से ज्यादा यहाँ कोई नहीं रुकेगा। चार दिनों के बाद तो यह मेला उजड़ जायेगा।''

और पिताजी हम यहाँ कितने दिन रुकेंगे ?''

''ओहो ! कह दिया न बेटा ! चार दिनों से ज्यादा यहाँ कोई रुकनेवाला नहीं है। हम भी यहाँ केवल चार दिन के ही मेहमान हैं।''

''और पिताजी ! ये सब कहाँ चले जायेंगे ?''

''कोई कहीं जायेगा तो कोई कहीं। सब अपनी-अपनी राह चले जायेंगे। भिन्न-भिन्न दिशाओं से आये हैं और भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जायेंगे।

चेतनमलजी ने घूम-घूमकर पूरा मेला देखा। मेले में नाना प्रकार के लोग थे, नाना प्रकार के पशु-पक्षी, हाथी-घोड़े, भैंसे, गधे, तोते, सर्प, सपेरे आदि; तरह-तरह की दुकानें थी। किसी भी चीज की कमी नहीं थी। नाचनेवाले, गाने-बजानेवाले तथा ढोल, मंजीरा, नगाड़े, शहनाई आदि सभी चित्र-विचित्र वस्तुओं का संयोग मेले में सुलभ था। कई लोग हँस रहे थे तो कुछेक लोग बच्चे आदि अपने साथियों से बिछुड़ जाने के कारण आँसू बहा रहे थे।

चेतनमल ने यह सब घूम-घूमकर देखा और कोई बात समझ में न आने

पर अपने पिताजी से सहज समाधान भी प्राप्त किया; पर चेतनमलजी को इस दुनिया रूपी मेले के संबंध में सच्चा समाधान कहीं से भी प्राप्त नहीं हो रहा था।

बचपन के चार दिनों वाले मेले को विस्मृत कर, एक बार फिर से वे इस दुनियारूपी अनादिनिधन मेले में आ गये। वे पुन: सोचने लगे ह्न ये मुझे इष्टजनों एवं मित्रजनों का जो संयोग प्राप्त हुआ है ये सब कहाँ से आये हैं ? क्या ये सब चले जावेंगे ? क्या मैं भी चला जाऊँगा ? मैं कहाँ जाऊँगा ? मैं कहाँ से आया हूँ ? मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ? ये जो दिखता है, क्या वही मेरा सच्चा स्वरूप है ? तो क्या मैं भी मर जाऊँगा ? तो क्या मुझे भी मरना होगा ?''

उनके हृदय में जिस समय यह मंथन चल रहा था, उस समय वे एक बाग में बैठे हुए थे। बाग से कुछ दूरी पर एक झोपड़ा था, झोपड़े के बाहर

ा लेकर बैठी

की ओर चला

वित कंकाल

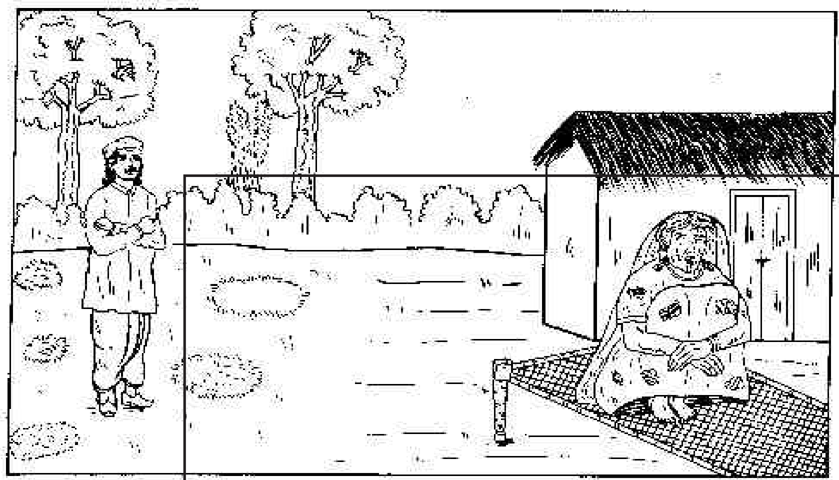

मात्र थी। सफेद झख बाल थे, लेकिन धूल में मैले पड़ गये थे। अन्दर को धंसी हुई आँखें, झुर्रियों से भरा हुआ चेहरा, फटे-पुराने कपड़े पहने हुए वह बुढ़िया किसी भी सामान्यजन को डरा देने के लिए सक्षम थी। वह शायद बीमार भी थी, खाँस रही थी, बड़ी दयनीय दशा थी। चेतनमलजी सोच रहे थे ह्न ''क्या यह बुढ़िया भी कभी जवान नहीं रही होगी ? अवश्य रही होगी। तब आज इसकी ऐसी दशा क्यों हो गयी ? क्या मेरी भी कभी ऐसी दशा हो जायेगी ? तो क्या मेरे भी कभी बुढ़ापा आयेगा ? आयेगा तो सही सबका आता है। आखिर क्यों होता है ऐसा ? क्या सदा-सदा काल के लिए जीवित रहनेवाला और सदैव ही एक-सा जवान रहनेवाला भी इस दुनिया में कोई है ? यदि है तो वह कौन है ? इन सब बातों का समाधान मुझे कहाँ से हो ?

इन्हीं सब विचारों में चेतनमलजी खोये हुए थे कि तभी बाग में ही एक ओर बैठे हुए सेठ पारखीप्रसाद पर उनकी दृष्टि पड़ी। सेठ पारखीप्रसादजी धर्मात्मा व्यक्ति थे, इसलिए चेतनमलजी ने सोचा कि इन सब बातों का समाधान पारखीप्रसादजी से ही हो सकता है। वे वहाँ से उठकर सेठ पारखीप्रसादजी के नजदीक पहुँचे और अपने हृदय के सभी विचार पारखीप्रसादजी के सम्मुख प्रस्तुत किये। पारखीप्रसादजी उनके विचारों को सुनकर खुश होते हुए बोले ह्न ''वाह भाई वाह चेतनमल ! तुम्हारे ये क्रान्तिकारी विचार सुनकर मुझे हर्ष हो रहा है। तुम्हारे यह विचार सचमुच ही क्रान्तिकारी विचार हैं। तुम्हारे ये विचार कोई साधारण विचार नहीं, बल्कि ये तो क्रान्तिकारी विचार हैं। मुझे ऐसा लगता है कि निश्चित ही तुम्हारे अन्दर एक विराट क्रान्ति उदित होनेवाली है। तुम्हारे ये विचार अभिनन्दन के योग्य हैं। ऐसे क्रान्तिकारी विचार हर किसी के हृदय में उत्पन्न नहीं हो सकते। यह तो उन्हीं गिने-चुने भाग्यशालियों के हृदय में उत्पन्न होते हैं, जिनके जीवन में से सदा-सदा के लिए दु:ख की सत्ता का नाश होनेवाला

हो। तुम बड़े भाग्यशाली पुरुष हो। सच्चे सुख की चाह रखनेवाले को ऐसे विचार निश्चित रूप से उत्पन्न होने ही चाहिए। तुम्हें ऐसी जिज्ञासाएँ जागृत हुई हैं तो उन जिज्ञासाओं का समाधान भी निश्चितरूप से प्राप्त होगा ही, जरा धैर्य धारण करो।''

''इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान मुझे कहाँ से प्राप्त होगा ? मुझे भी तो बताओ ? चेतनमलजी अधीर होते हुए बोले ह्न

जिनवाणी में। तुम जिनवाणी का रुचिपूर्वक स्वाध्याय करो, तुम्हारी सभी शंकाओं का समाधान वहाँ होगा।''

ऐसी जिनवाणी मुझे कहाँ से प्राप्त होगी ? आप मेरे लिए जिनवाणी की व्यवस्था कर दो न !

''मैं तुम्हारे लिए जिनवाणी की व्यवस्था अवश्य ही करूँगा। यह तो मेरा कर्तव्य है। पर भाई ! तुम कल से जिनमन्दिर में भी अवश्य आया करो, क्योंकि जिनवाणी का सहज समागम तो जिनमन्दिर में ही सुलभ है।''

चेतनमलजी उत्साहित होते हुए बोले ह्न ''अवश्य, अवश्य; मैं कल से जिनमन्दिर भी अवश्य आऊँगा। □

यह कैसा विचित्र संयोग है पुण्य-पाप का ? यह रूप-लावण्य सचमुच कोई गर्व करने जैसी चीज नहीं है। इतना और ऐसा पुण्य तो पशु-पक्षी भी कमा लेते हैं, फुलवारियों के फूल भी कमा लेते हैं, वे भी देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं; पर कितने सुखी हैं वे ?

ह्न इन भावों का फल क्या होगा, पृष्ठ - **५३**

बिल्कुल ठीक ऐसा ही है

आगरा नगर के साफ-सुथरे मकान के हालनुमा कमरे के एक ओर बिछौने पर अधेड़ उम्र का व्यक्ति बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। उसके एक हाथ में कलम थमी हुई है तथा सामने ही रखी चौकी पर कुछ पोथियाँ एवं एक खुली हुई पुस्तिका पड़ी हुई है। रात्रि के ८ बजे का समय है। पास ही में तेल वाला एक साफ-सुथरा लैम्प जल रहा है। बैठक के ठीक सामने वाले भाग की ओर कुछ व्यापारिक बिक्री का सामान पड़ा हुआ है तथा तराजू, बाँट आदि व्यवस्थित ढंग से रखे हुए हैं। इससे ऐसा लगता है कि वहाँ किराने के छुट-पुट सामान की फुटकर दुकान लगी हुई है।

दुकान में ही अड़ोस-पड़ोस के बच्चे बैठे हुए कुछ खेल रहे हैं। कमरे में और लोग भी आ-जा रहे हैं, लेकिन विचारमग्न मुद्रा में ही बैठे उस व्यक्ति को किसी से कोई प्रयोजन ही नहीं है। ऐसा लगता है, मानो वह व्यक्ति स्वयं कोई आगन्तुक मेहमान हो; परन्तु वह कोई मेहमान नहीं, बल्कि इसी मकान के मालिक स्वयं बनारसीदासजी ही हैं।

बनारसीदासजी सारे आगरा नगर में 'कवि चाचा' के नाम से जाने जाते हैं। देश के सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में वे आध्यात्मिक कविवर पण्डित बनारसीदासजी के नाम से प्रसिद्ध हो चुके हैं। घर-घर में उनके द्वारा लिखित समयसार नाटक की ही चर्चा थी।

पण्डित बनारसीदास का मुख्य कार्य चिन्तन, मनन, लेखन एवं तत्त्वप्रचार ही था। इन कार्यों के अलावा इनके पास और किसी कार्य के लिए कोई समय ही नहीं बचता था। इनकी इस आदत से कभी-कभी इनकी पत्नी भी परेशान हो जाया करती थी।

बाहर सड़क पर इस समय विशेष हलचल हो रही थी। सभी लोग अपने-अपने कार्य छोड़कर मकानों के बाहर गैलरियों एवं आँगनों में इकट्ठे हो रहे थे। दूर से ही ढोल एवं बाजों की आवाजें सुनाई दे रही थीं। चौकीदार हाथ में डंडा लेकर सड़कों पर आने-जाने वाले लोगों को तथा सड़कों पर ही ठेले आदि जमाये हुए लोगों को इधर-उधर करने में व्यस्त था। ऐसा लगता था, जैसे अभी-अभी ही यहाँ से कोई जुलूस प्रस्थान करनेवाला हो।

नगर के सबसे बड़े रईस के लड़के की शादी थी और इसी का जुलूस अभी-अभी यहाँ से निकलने वाला था। इसी जुलूस को देखने के लिए लोग अपने-अपने घरों के बाहर गैलरियों और छतों पर जमा होने लगे थे। ज्यों-ज्यों जुलूस नजदीक आता जा रहा था, त्यों-त्यों ढोल-बाजों तथा विभिन्न वादित्रों की आवाजें तेज होती जा रही थीं। गैसों की रोशनी से सारी सड़कें नहा उठी थीं। नाचनेवाले के घुंघरु की आवाजें तेजी से सुनाई दे रही थीं। विभिन्नप्रकार के ठाठ-बाटों से सजा यह जुलूस इस समय पण्डित बनारसी-दासजी के मकान के सामने से गुजर रहा था; परन्तु पण्डितजी तो अब भी इसी तरह से विचारमग्न मुद्रा में बैठे हुए थे, जैसे बाहर कुछ भी न हो रहा हो। तभी बाहर से एक औरत कुछ तेज कदमों से चलती हुई आती है। यह औरत और कोई नहीं, बल्कि पण्डितजी साहब की धर्मपत्नी ही हैं। पण्डितजी के पास आकर कुछ जोर से कहती है ह्न

''अरे ! आप यहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं ? चलिए बाहर।''

''बाहर क्या है ? अरे आप देख नहीं रहे बाहर में तो धूम मची हुई है। सारे मोहल्ले के लोग तो जुलूस देख रहे हैं। मैं तो आपको ही बुलाने आई हूँ। जल्दी चलिये, वरना आगे निकल जायेगा।''

''अरे तुम तो ऐसी बात कर रही हो, जैसे बाहर से जिनेन्द्र भगवान का जुलूस जा रहा हो'' पण्डितजी हँसते हुए बोले और फिर लिखने को उन्मुख हुए तो पत्नीजी बोली ह्न

''जिनेन्द्र भगवान का जुलूस तो नहीं है, पर देखने में क्या है ?''

''मैं भी तो तुमसे यही पूछता हूँ कि आखिर उसे देखने में है क्या ? क्या है वहाँ देखने जैसा ? जहाँ देखने जैसा है, वहाँ तो देखते नहीं है और जहाँ देखने का कुछ नहीं वहाँ देखने को दौड़ते हैं, बेचारे जगत जन ! भाई ! देखने जानने लायक तो एक मात्र निज आत्मा ही है। उसी को देखो, जानो, वरना यह अमूल्य मनुष्य भव जो मिला है, वह तो पूरा हो ही जायेगा।'' कहते हुए पण्डितजी गम्भीर हो गये। अब पण्डिताइन के पास कहने के लिए कुछ भी नहीं था। पतिदेव की बात की गम्भीरता को वह अच्छी तरह समझ चुकी थी। पण्डितजी के पास में बालक की भांति बैठ गयी और पण्डितजी के द्वारा लिखी हुई रचना को निहारने लगी। गाजे-बाजे की आवाज धीरे-धीरे दूर होती जा रही थी।

पण्डितजी कुछ लिखने में व्यस्त हो चुके थे। अभी कुछ ही समय बीत पाया था कि इतने में पाँच-छह व्यक्ति चर्चा करते हुए कमरे में प्रवेश करते हैं। उनकी आवाज सुनकर पण्डितजी का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठता है तथा पत्नी उठकर एक ओर बैठ जाती है। आगन्तुक सज्जन लगभग एक साथ बोलते हैं ह्न

''कवि भाई ! जय जिनेन्द्र, शुद्धात्म सत्कार।''

''जय जिनेन्द्र, शुद्धात्म सत्कार; आइये बैठिये, कहो कैसे हो ? सब ठीक तो है न ?'' पण्डितजी ने हँसते हुए हालचाल पूछा।

''हाँ ठीक ही है'' सभी एक साथ बोले।

''कहाँ ? मन्दिर से'' पण्डितजी ने पूछा।

हाँ, सीधे मन्दिरजी से ही आ रहे हैं'' एक भाई बोला।

आगन्तुक सज्जन और कोई नहीं, बल्कि पण्डित बनारसीदासजी के साधर्मी मित्र थे। कुछ देर महफिल में मौन बना रहा।

''एक नई मुसीबत खड़ी हो गई है कवि भाई !'' कहते हुए एक भाई ने मौन तोड़ा।

''मुसीबतें हमको छूती ही कहाँ हैं ?'' मुस्कराते हुए पण्डितजी बोले।

''ठीक है पर................'' दूसरे भाई बोले।

''ये देखो, विरोध-पत्र निकाले हैं अज्ञानियों ने'' कहते हुए एक भाई ने एक पत्र पण्डितजी के हाथ में थमाया।

''हूँ तो यह बात है'' कहते हुए पण्डितजी ने पत्र हाथ में लिया और पूरा पढने के बाद करुण स्वर में बोले ह्न ''भोले हैं बिचारे''

''कितनी विपरीतता है, न मालूम ऐसे-ऐसे लोग कहाँ से पैदा हो जाते हैं इस धरती पर'' एक भाई जोश में आकर बोले।

''इसमें कोई खास बात नहीं है। असंख्य प्रकार की परिणति वाले लोग हैं। किसी भी संसारी जीव की परिणति किसी दूसरे जीव से नहीं मिलती। हमें तो उनकी होनहार ही का विचार करके मन में समता भाव लाना चाहिए'' पण्डितजी शान्तभाव से बोले।

''यह तो ठीक है कवि भाई, पर ये लोग बेचारे भोले-भाले लोगों को व्यर्थ ही सत्य बात के खिलाफ भड़काते हैं। इसतरह से तो ये लोग इन बेचारे भोले-भाले लोगों का ही नुकसान करते हैं'' एक अन्य भाई आवेश में आकर बोले।

''देखो भाई ! कोई किसी को भड़का देवे अथवा किसी का नुकसान कर देवे। ऐसा वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। प्रत्येक जीव स्वयं अपने आप का ही बुरा अथवा भला कर सकता है। विरोध करने वाले जीव अपना ही

बुरा करते हैं, पर का नहीं; इसलिए हमें व्यर्थ परेशान होने की कोई आवश्यकता ही नहीं है'' पण्डितजी समझाते हुए बोले।

''पर ये विरोधी लोग अन्य भोले-भाले लोगों को बुरा होने में निमित्त तो बनते हैं न ?'' एक भाई ने रोष प्रकट किया।

''हाँ मात्र निमित्त बनते हैं। इन विरोधियों के निमित्त से जिन लोगों का बुरा होता दिखाई देता है ह्न वो बुरा, लोगों को स्वयं की योग्यता के कारण ही होता है, विरोधियों के कारण से नहीं, विरोधी तो निमित्त मात्र हैं; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य प्रतिसमय अपनी-अपनी पर्यायों से युक्त रहता ही है, एक समय के लिए भी अपनी पर्यायों से रहित नहीं होता। प्रत्येक समय नवीन पर्याय का उत्पाद होना और पुरानी पर्याय का व्यय होना ह्न यह प्रत्येक द्रव्य का स्वयंसिद्ध लक्षण ही है; तब जो भी पर्याय या परिणति उत्पन्न हुई तो परद्रव्य के कारण अर्थात् निमित्त के कारण से हुई ह्न यह बात ही कहाँ से आई ? अर्थात् एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के कारण से कुछ होता हो ह्न ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। इसलिए तो मैंने लिखा है ह्न

उपादान को बल जहाँ, तहाँ नहीं निमित्त को दाव।
एक चक्र सो रथ चले, रवि को यह स्वभाव॥

''समझ में आया ?'' समझाते हुए पण्डितश्री बनारसीदास ने पूछा ?

''बिल्कुल ठीक, ऐसा ही है'' सभी साधर्मी भाई लगभग एक साथ बोल उठे।

तो अब छोड़ों उस द्विविधा को और अपना कल्याण करो। लो देखो तो, मैंने ये कुछ लिखा है। कैसा बन पड़ा है ह्न जरा देखना।''

कहते हुए पण्डितजी ने अपनी नवीन रचना दोस्तों के हाथों में थमा दी और वे सब उसे देखने में तल्लीन हो गये।

ठूँठ

और अधिक देर तक उड़ पाना अब उसके वश में नहीं था। वह उड़ते-उड़ते बहुत थक चुकी थी। अब तो वह कहीं बैठना चाहती थी। दूर-दूर तक दृष्टि घुमायी, लेकिन कहीं बैठने लायक जगह नहीं दिखाई दी। लेकिन अब बैठना भी तो आवश्यक था, थक जो चुकी थी। आखिर थक-हार कर वहीं खड़े हुए वृक्ष के एक विशाल ठूँठ पर बैठ गई। उसकी इच्छा तो यह थी कि कोई विशाल हरा-भरा पेड़ आराम के लिए मिलता तो अच्छा रहता, परन्तु वहाँ हरा-भरा कोई पेड़ हो, तब न ? आखिर उसे उस तपती दोपहरी में उसी ठूँठ की शरण लेनी पड़ी। वह बहुत थक चुकी थी। गरमी भी बहुत पड़ रही थी, पर करे क्या।

कुछ पल बीते शारीरिक थकान तो थोड़ी दूर हुई, परन्तु मानसिक थकान और ज्यादा बढ़ती जा रही थी। उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि नन्दन बाग और कितनी दूर है ? नन्दन बाग को ढूँढते-ढूँढते ही तो वह थक चुकी थी। उसकी याददाश्त के अनुसार तो बाग यहीं कहीं आसपास होना चाहिए था, परन्तु मिल क्यों नहीं रहा ? शायद थोड़ा और आगे हो परन्तु यह कैसे संभव है ? वह सोचने लगी ह्न ''कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मैं स्वयं रास्ता भटक कर गलत रास्ते पर आ गई होऊँ ? पर यह कैसे हो सकता है ? रास्ते का ज्ञान तो मुझे बराबर है। रास्ते की एक-एक वस्तु को अच्छी तरह जानती हूँ। इस राह को छोड़े हुए अभी डेढ़-दो वर्ष ही तो बीते हैं। इतनी जल्दी थोड़े ही भूल सकती हूँ। तब आखिर बात क्या हुई ? आखिर बाग गया कहाँ ? शायद थोड़ा और आगे हो ? चलो कोई बात नहीं, मिल जायेगा।''

उसकी शारीरिक थकान लगभग दूर हो चुकी थी। अब वह अपने पास के वातावरण का निरीक्षण करने लगी। सामने ही बड़े-बड़े मिट्टी के ढेर लगे हुए थे। एक तरफ बहुत बड़ा गड्ढा उसे नजर आ रहा था। कई लोग उस गड्ढे के आसपास उसको कुछ करते नजर आये, शायद वे गड्ढे को और ज्यादा लम्बा-चौड़ा बनाने में व्यस्त थे। उसने देखा कुछ लोग खोद रहे हैं तो कुछ लोग खोदी हुई मिट्टी को भर-भर के उन सामनेवाले मिट्टी के ढेरों की ओर ले जा रहे हैं। उस तपती दोपहरी में तगारों और फावड़ों तथा लोगों के चिल्लाने की आवाज से उसका जी घबराने लगा था। उसको प्यास भी बहुत ज्यादा लगी थी, पानी पीना चाहती थी। वहीं उसी गड्ढे के एक ओर पानी भी दिखाई दे रहा था, जिसे कुछ लोग बाल्टियों में भर-भर कर एक ओर फैंकने में व्यस्त थे, परन्तु वहाँ जाने में उसे डर लग रहा था। इसी बीच उसे फिर नन्दन बाग की याद सताने लगी; लेकिन वह थोड़ी देर और आराम करना चाहती थी। अब वह जिस वृक्ष के ठूँठ पर बैठी थी, उसी का निरीक्षण करने लगी। विशालकाय वृक्ष था, कई शाखाएँ थीं; परन्तु फल, पत्तियाँ एवं डालियाँ गायब थीं , जमीन के बाहर निकल आयी थी। अचानक उसकी दृष्टि उसी ठूँठ के बीचों-बीच बनी हुई एक खोह पर पड़ी। खोह को देखते ही उसको फिर से नन्दन बाग की याद ताजी हो गई। नन्दन बाग के जिस विशाल वृक्ष पर उसका बसेरा था, उस वृक्ष की खोह भी ऐसी ही थी। कभी-कभी मुसीबत के आने पर वह उसी खोह में छुप जाया करती थी। अब वह नन्दन बाग के लिए उड़ना ही चाहती थी कि अचानक उसकी दृष्टि आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी पर पड़ी। वह उड़ता हुआ उसी की तरफ आ रहा था। वह भी कोयल ही थी। अपनी तरफ आते हुए देख उसने सोचा ह्न क्यों न इसी से नन्दन बाग के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली जाए ? आने दो, इसी से पूँछती हूँ। ज्यों ही वह उसके पास से गुजरी, उसने तुरन्त पुकारा ह्न बहिन ! जरा ठहरना।

तब वह उड़ती हुई कोयल रुकी। उसी के पासवाली शाखा पर बैठ गई, बोली ह्न ''कहो, क्या बात है ?''

''बहिन ! नन्दन बाग अब यहाँ से कितनी दूर है ? तथा कौन-सी दिशा में है ? जरा बताना तो।''

''नन्दन बाग ! कौन-सा नन्दन बाग ?'' दूसरी ने पूछा।

''अरे, वही, जिसके बीचों-बीच आम का एक विशालकाय वृक्ष है तथा जिसके कुछ ही दूरी पर एक सुन्दर झरना बहता है'' पहली ने कहा।

''ओह ! अच्छा, अच्छा, वो नन्दन बाग ! अरे ! इतना भी नहीं जानती? यह नन्दन बाग ही तो है। यही तो वो विशालकाय आम का वृक्ष है, जिस पर हम बैठे हुए हैं।'' दूसरी ने हंसते हुए बताया।

''तुम तो मजाक करती हो बहिन'' पहली बोली।

''मजाक, अरे मैं क्यों मजाक करने लगी ? सच कहती हूँ, वो जो सामने गड्ढा है, जिसमें मामूली पानी भरा हुआ है वही तो वह झरना है। देखो, क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं होता ?'' दूसरी ने बताया।

''लेकिन यहाँ तो हरियाली ही हरियाली थी, सुन्दर-सुन्दर फलों एवं फूलों से लदे वृक्ष थे, पेड़ों के झुरमुट थे, पक्षी निरन्तर कलरव किया करते थे और आज तो यहाँ मिट्टी के इन ढेरों के अलावा कुछ भी नजर नहीं आता। कहाँ गये ये सब ? यह क्या हो गया ? कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही ? यह सब कैसे सम्भव है ?'' आश्चर्यमिश्रित अविश्वास के स्वर में पहली बोली।

''बहिन ! इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? प्रकृति का तो ऐसा ही स्वभाव है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। प्रत्येक वस्तु निरन्तर बदलती रहती है। किसी भी वस्तु की अवस्था नित्य एक जैसी नहीं रहती, वस्तु की प्रत्येक अवस्था अनित्य ही है। जहाँ कभी महल खड़े दिखाई देते हैं वहीं पर

कभी खण्डहर खड़े नजर आते हैं। जहाँ कभी अतिवृष्टि होती देखी जाती है, वहीं कभी अनावृष्टि नजर आती है, जो कभी हँसते हुए देखे जाते हैं वहीं कभी रोते हुए नजर आते हैं। जहाँ कभी समुद्र होते हैं, वहीं कभी पहाड़ खड़े नजर आते हैं।

अरे ! औरों की बात तो जाने दो बहिन ! तुम स्वयं अपने आपको देखो न, क्या तुम्हें अपने अन्दर भी बदलाव नजर नहीं आता ? क्या अब भी तुम वैसी ही हो जैसी पहले थीं ? पहले तुम जवान थीं, अब तो बूढ़ी नजर आती हो। जवानी में तुम्हारा अनुभव कितना था और अब कितना बढ़ गया है। अत: बहिन इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मेरी बात का पक्का विश्वास कीजिए। अच्छा ! अब मैं चलती हूँ, मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। कहती हुई दूसरी फुर्र से उड़ चली।

पहली की समझ में कुछ आया; कुछ नहीं आया। हाँ, पर इतना तो अवश्य समझ में आया कि यह वही जगह है जहाँ पर कुछ समय पहले बहुत ही सुन्दर नन्दन बाग था, जिसे वह अब तक ढूँढती फिर रही थी और जो अब परिणमन रूपी काल के गाल में समा चुका था। इसी बीच सांझ हो चुकी थी। अन्धकार अपनी बांहें पसारने की तैयारी कर रहा था और उसे अपनी रात गुजारने की चिन्ता सताने लगी। नन्दन बाग में जाकर रात शान्तिपूर्वक बिताने की उसकी इच्छा अब धूमिल हो चुकी थी। वापस लौट पाना भी उसके लिए संभव नहीं था। अब वह अपने आपको अशरण महसूस करने लगी थी। अहो! जगत में भटकते इन जीवों की सच्ची शरण का बोध कौन करावे ?

अभी दो वर्ष पहले की ही तो बात है। यहाँ बसे हुए हरे-भरे नन्दन बाग में यद्यपि उसके लिए सब कुछ ठीक ही था, पर वह सन्तुष्ट नहीं थी। उसने सोचा था ह्न यहाँ कोई खास सुख नहीं है, मुझे तो किसी दूसरे बाग में चले

जाना चाहिए और इसी निर्णय के साथ वह यहाँ से बहुत दूर सोमनस नामक बाग में सुख खोजने चली गयी थी। वहाँ जाकर भी किसी बात की कमी नहीं थी, पर दो साल वहाँ बिताने के बाद आज ही उसने वापस यहाँ आने की ठान ली थी। सोचा था ह्न यहाँ भी कोई खास दम नहीं है। इससे बेहतर तो पहले वाली जगह ही है। और फिर यहाँ आकर तो उसे बिल्कुल निराशा हाथ लगी। अब तो उसका कंठ सूखने लगा था, पानी के बिना बहुत दु:खी हो रही थी। वाह रे वाह ! संसार तेरे अन्दर सुख खोजने वाले को सुख कहाँ? दु:ख ही दु:ख, घोर दु:ख। वैसे तो वह सदा से ही अकेली थी, परन्तु आज वह इस भयानक वीरान में अपने आपको बिल्कुल अकेला महसूस कर रही थी। अपने आसपास किसी को भी न देखकर बहुत घबराने लगी थी। उस बेचारी को क्या मालूम था कि अकेलापन अपने आप में अभिशाप नहीं, बल्कि वरदान है।

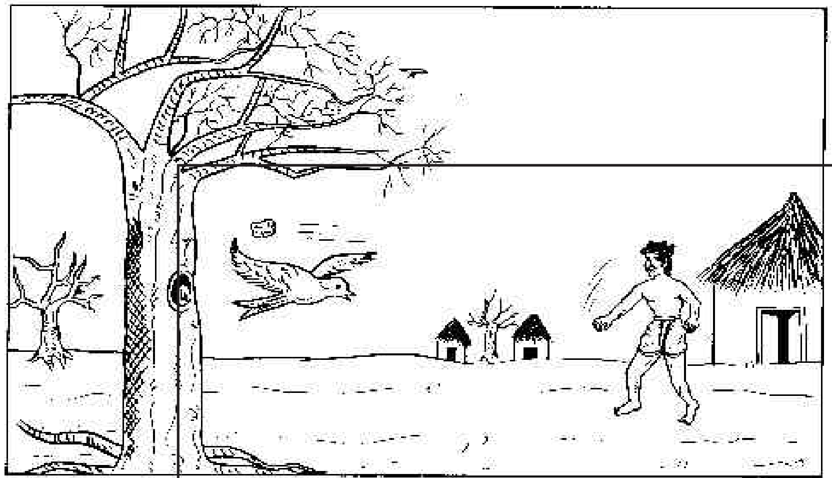

चाहती थी कि

े बींधता हुआ

अहो ! जगत की अशुचिता, दुष्टों की दुष्टता; उसके प्राण-पखेरू उड़ गये, अशुचि, अनित्य शरीर धम से धरा पर आ पड़ा।

बेचारा वृक्ष का ठूँठ। बड़ी मुश्किलों से उसे दो वर्षों बाद अन्य प्राणी का संयोग प्राप्त हुआ था, पर उसका भी वियोग हो गया। वह भी अकेला रह गया। सदा की भांति खड़ा का खड़ा, ठूँठ का ठूँठ।

अहो ! जगत की अनित्यता, अहो जगत की नश्वरता, अहो संसार की दु:खरूपता, अहो जगत का एकत्व, अहो जगत का अन्यत्व, अहो संसार की अुशचिता।

णमोकार महामंत्र की महिमा

यह महामंत्र भौतिक मंत्र नहीं है, आध्यात्मिक महामंत्र है; क्योंकि उसमें आध्यात्मिक पराकाष्ठा को प्राप्त पंच परमेष्ठियों को स्मरण किया गया है। अत: इसकी महानता भी भौतिक उपलब्धियों में नहीं, आध्यात्मिक चरमोपलब्धि में है। अत: इसका उपयोग भी भौतिक उपलब्धियों की कामना से न किया जाकर आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए किया जाता है और किया जाना चाहिए। भौतिक अनुकूलता की वांछा से इसका उपयोग करना कौआ को उड़ाने के लिए चिन्तामणि रत्न को फेंक देने के समान है।

आध्यात्मिक व्याधि मोह-राग-द्वेष के नाश करने के लिए यह परमौषधि है, विषय-वासनारूपी विष को उतारने के लिए यह नागदमनी जड़ी-बूटी है, भवसागर से पार उतारने के लिए अद्भुत अपूर्व जहाज है। अधिक क्या कहें, निजात्मा के ध्यान से च्युत होने पर एकमात्र शरणभूत यही महामंत्र है। इसमें जिन्हें नमस्कार किया गया है, वे विषय-वासनाओं से विरक्त ज्ञानी धर्मात्माओं को शरणभूत पंच परमेष्ठी ही हैं।

ह्न णमोकार महामंत्र, पृष्ठ - ८०

कोरे सपने

राजू सेठ बीमार हो गये। आठ दिन हो गये खटिया को पकड़े हुए, लेकिन फिर भी रोग जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। गोलियाँ खाते-खाते परेशान हो गये। बीमार तो वे पहले भी कई बार हुए थे, लेकिन इतने ज्यादा नहीं। दो चार गोलियाँ खाने के बाद ठीक हो जाते थे। वे बड़े विचारशील व्यक्ति थे। जब कभी भी बीमार हो जाते तो सोचने लगते ह्न ''इस काया और माया का कोई भरोसा नहीं है। क्या पता कब नष्ट हो जाये ? धन, वैभव, बंगला, कारोबार सब यहीं पर पड़े के पड़े रह जायेंगे। कोई भी साथ जानेवाला नहीं है। इसलिए थोड़ा बहुत तो आत्मकल्याण कर ही लेना चाहिए।''

और फिर सोचते-सोचते ही धीरे से करवट बदल लेते तथा मन ही मन आगे का कार्यक्रम बनाने लगते ह्न ''स्वस्थ हो जाने पर रोजाना दो समय मन्दिर जाया करूँगा। आधा-आधा घंटा पूजन एवं भक्ति, डेढ घंटा स्वाध्याय, घंटा भर चिन्तन-मनन एवं पाँच-दस मिनट तक आत्मध्यान और फिर सबेरे १० बजे बाद ही आराम से दुकान खोलनी और शाम को पाँच बजते-बजते बन्द कर देनी। हर अष्टमी और चौदस को एकाशन करना तथा व्यापार बन्द रखना।''

परन्तु उक्त विचार और निर्णय सिर्फ बीमारी के दिनों तक ही सीमित होते थे। स्वस्थ हुए नहीं कि सब विचार रफा-दफा। फिर से व्यापार-धंधे और दुनियादारी तथा मान-सम्मान के चक्कर में व्यस्त हो जाते थे।

परन्तु इन दिनों रोगों ने कुछ ज्यादा ही परेशान कर रखा था। स्वास्थ्य काफी हद तक गिर चुका था। अंग-अंग में पीड़ा का अनुभव हो रहा था। इसी वजह से अन्दर का वैराग्य भी काफी हद तक बढ़ चुका था। लेटे-लेटे

ही संसार की निस्सारता पर गंभीरता से विचार कर रहे थे। इसी समय उनके मित्र महेन्द्रकुमारजी उनसे मिलने के लिए आ रहे थे। महेन्द्रकुमारजी संसार से विरक्त आत्मानुभवी एवं तत्त्वदृष्टिवन्त थे। संसार के वास्तविक स्वरूप से परिचित थे। महेन्द्रकुमारजी को देखते ही राजू सेठ कराहते हुए धीमी-धीमी आवाज में बोले ह्न ''आओ भाई महेन्द्र बैठो !'' महेन्द्रकुमारजी बैठ गये।

आवश्यक हालचाल पूछ चुके तो राजू सेठ भरी-भरी सी आवाज में कहने लगे ह्न ''यार मैं सोच रहा हूँ कि इस जड़ पुद्गल की सेवा करते-करते काफी समय व्यतीत हो गया, अब तो आत्मा का कल्याण कर ही लेना चाहिए। जीवन का क्या भरोसा, आज है कल नहीं। सब क्षणभंगुर है। देखते ही देखते विनाश हो जाने वाला है। इस शरीर को देखो न यार ! आठ दिनों के अन्दर ही कितना दुबला-पतला हो गया। रंग तक बदल गया। कितना काला पड़ गया है। एक बार थोड़ा स्वस्थ हो लूँ तो इस पाप की जिन्दगी से थोड़ा विश्राम कर लूँ। क्या धरा है व्यापार-धंधे में। जीवन के ४० साल तो व्यतीत हो गये पाप की कमाई करते-करते। पाप का फल भुगतने के लिए नरक में तो अकेले ही जाना पड़ेगा। वहाँ कोई स्त्री-बच्चे तो साथ में आनेवाले हैं नहीं।

अब तो बाकी बचे पच्चीस-तीस साल आत्मकल्याण के लिए लगा देना चाहता हूँ। व्यापार-धंधा सीमित करके पूजन स्वाध्याय में अधिकाधिक समय लगाना चाहता हूँ।''

''बहुत अच्छी बात है यदि तुम ऐसा कर सको तो, पर कोरे सपने देखने से क्या फायदा। ऐसी बातें तो तुम पहले भी कई बार बीमारी के अवसर पर कर चुके हो।'' महेन्द्रकुमारजी किंचित् मुस्कराते हुए बोले।

''हाँ यार ! तुम ठीक कहते हो, पर अब की तो बात दूसरी ही है। अबकी बार तो मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है।'' कहते-कहते राजू सेठ धीरे से पलंग पर उठ खड़े हुए। आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए अलमारी तक गये। वहाँ से गोली की एक टिकिया उठाते हुए वापस पलंग पर आकर बैठ गये। पानी के सहारे गोली को मुँह में डालकर गले के अन्दर उतार कर धीमे-धीमे वापस पलंग पर लेट गये।

''अच्छी बात है। हम देखते हैं, कहाँ तक तुम अपनी बात पर दृढ़ रहते हो।'' यह कहते हुए महेन्द्रकुमारजी किंचित् मुस्कराये और वहाँ से विदा लेते हुए अपने घर की ओर रवाना हो गए।

महेन्द्रकुमारजी अपने घर के दरवाजे की चोखट में कदम रखने ही वाले थे कि पीछे से आवाज आई ''महेन्द्र चाचा ! महेन्द्र चाचा ! जरा जल्दी चलो तो !! पिताजी की तबियत एकदम बिगड़ गयी है।''

महेन्द्रकुमारजी चौंकते हुए पीछे मुड़े। आवाज जानी-पहचानी-सी लग रही थी। देखा तो राजू भाई का छोटा लड़का गुड्डू उन्हें ही पुकार रहा था। तबतक वह दौड़ता हुआ उनके करीब ही आ चुका था।

''क्या हुआ तुम्हारे पापा को ? मैं अभी-अभी तुम्हारे पापा से मिलकर यहाँ आ रहा हूँ बेटा।''

''चाचाजी ! आपके जाने के कुछ देर बाद ही पापा की छाती में (सीने

में) जोरों से दर्द होने लगा है। चिल्ला रहे हैं। मैं दौड़ा-दौड़ा आपको बुलाने आया हूँ।'' गुड्डू हाँफते हुए बोला।

महेन्द्रकुमारजी उल्टे पांव राजू सेठ के घर पहुँचे, पर उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही राजू सेठ परलोक को सिधार गये थे।

दूर कहीं पर मंगतरायजी की पंक्तियाँ गूँज रही थी, जो कि महेन्द्रकुमारजी के कानों से टकरा रही थीं ह्न

राजपाट सब तज गये राजा, कुछ न ले गयी रानी।
जग की बातें रह गयी जग में, काल ने एक न मानी॥
अरे ! उड़ चला हंस सैलानी................

अनन्त दु:ख तो दूर हो ही जाता है

जिसप्रकार धरती में गड़े हुए धन का ज्ञान हो जाय, उसकी प्रतीति हो जाय तो मानसिक दरिद्रता का अन्त तो तत्काल हो ही जाता है, आवश्यकता की पूर्ति भले कुछ काल बाद हो; उसीप्रकार आत्मा के अनन्त गुणों एवं अनन्त शक्तियों का परिचय एवं प्रतीति हो जाय तो आंशिक रूप से आत्मिक आनन्द का स्वाद तो तत्काल आ ही जाता है, मानसिक रूप से अनन्त दु:ख तो दूर हो ही जाता है। दैहिक दु:ख दूर होने में भले देर हो जाय।

ह्न सुखी जीवन, पृष्ठ **१५२**

करोड़ीमल का स्वप्न

करोड़ीमल व्यापार करते थे। नाम तो करोड़ीमल था, पर अभी वे लखपति भी नहीं थे। हाँ, वे लखपति बनना चाहते थे, वे सदैव सेठ बनने का स्वप्न देखते। बाप-दादों के हाथ का धन तो विरासत में मिल नहीं पाया था। औरों को साधन सम्पन्न देखकर जैन का मन भी साधन सम्पन्न बनने के लिए मचलने लगता। वे सोचते पर आज के जमाने में साधारण व्यक्ति के लिए लखपति हो पाना कोई आसान बात तो है नहीं। इसके लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं।

यही सोचकर करोड़ीमलजी भी धन कमाने के लिए दिन-रात एक करते, भूखों मरते, सर्दी-गर्मी सहन करते, बोझ वहन करते, ग्राहकों को अपने पास प्रेम से बुलाते, मीठा बोलते, चाय पिलाते, खुशामद करते, अधिक लेते, कम देते, मनमाना दाम वसूल करते।

कौन-सा धन्धा था, जो करोड़ीमलजी ने न किया हो। चोरी का माल वे खरीदते, कभी सरकारी सीमेन्ट तो कभी अन्य लोहखण्ड मटेरियल आदि का धंधा उन्होंने किया।

काला बाजारी वे करते ह्न सरकारी शक्कर की, गेहूँ की, कपड़े की। मिलावट वे करते बेसन में आटे की, डीजल में केरोसीन की। नकली माल बेचते। कंजूसी भी बहुत करते। ढंग से कपड़े भी न पहिनते। फटे-पुराने कपड़े से ही अपना काम चलाते। ढंग से खुद भी न खाते, दूसरों को भी खाने न देते। बसों के इस जमाने में भी कहीं बस में बैठकर न जाते, अपनी पुरानी साइकिल पर सवार होकर ही दूर-पास ह्न सब जगह जाते।

परिवार के किसी सदस्य के हाथ से कभी कोई नुकसान हो जाता तो

क्रोधित होकर चिल्लाते, हाय-तोबा मचाते, सर पीट लेते। मजदूरों से मजदूरी करवाते और पूरे पैसे नहीं देते।

करोड़ीमलजी के पास ग्राहक माल खरीदने आता, पूछता ह्न सेठजी शक्कर क्या भाव ?

सेठजी कहते ह्न ''छह रुपये किलो।''

करोड़ीमलजी २५० ग्राम शक्कर तौलकर देते और २५० पैसे काट लेते।

जब ग्राहक पूछता ह्न ''सेठजी ऐसा क्यों ? २५० ग्राम के तो १ रुपये ५० ही हुए न।''

करोड़ीमलजी समझाते हुए कहते ह्न ''पूरी किलो भर लेने से छह रुपये के हिसाब से मिलेगी, खुदरा तो दस के हिसाब से ही मिलती है।''

करोड़ीमलजी के पास ग्राहक आकर पूछता ह्न सेठजी ! शुद्ध डीजल मिल जायेगा।

''हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? यहाँ तो सब शुद्ध ही मिलता है।

जब कोई शिकायत लेकर वापिस आता तो सेठजी साफ-साफ बच निकलते। कहते ह्न ''हम इसमें क्या कर सकते हैं ? आगे से ही ऐसा माल आता है। इस जमाने में तो सब बेईमान हो गये हैं। तुम तो जानते ही हो।''

इसतरह देखते ही देखते, करोड़ीमलजी लखपति हो तो गये। पर अब वे सोचने लगे, आज के जमाने में लाख दो लाख से होता क्या है। लखपति बनते ही करोड़पति बनने का स्वप्न देखने लगे।

करोड़ीमलजी की दुकान के सामने ही एक धार्मिक स्थान था। वहाँ प्राय: धर्मसभाओं का आयोजन होता रहता था। समय-समय पर त्यागी, व्रती एवं विद्वान आते रहते थे। धर्म एवं धन के स्वरूप पर प्रकाशते डालते रहते थे। कोई विद्वान कहता ह्न धन का परिणमन स्वतंत्र है, अपने आने के काल में आता है और जाने के काल में जाता है। धन की अवस्था जीव के आधीन नहीं है। आत्मा धन नहीं कमा सकता है। मात्र धन कमाने का भाव कर सकता है और उसी समय यदि धन के आने की योग्यता हो तो धन आता है अन्यथा जीव कितने ही प्रयत्न क्यों न करे, यदि धन के आने की योग्यता न हो तो वह एक पैसा भी कमा नहीं सकता।''

सभा को सम्बोधित करते हुए कोई महात्मा कहते ह्न '' रे पापी ! धन किछु उपजाया तौ न हो है। भाग्य तें हो है, सो ग्रन्थाभ्यास आदि धर्म साधन तैं जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किये कैसें न होगा ? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसें होगा ? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यास विषैं काहे कौं शिथिल हूजै। बहुरि सुनि ! धन है सौ तौ विनाशीक, भयसंयुक्त है, पापतैं निपजै है, नरकादि का कारण है।''

कोई अन्य विद्वान आकर समझाते ह्न ''धन का होना या न होना यह सब पूर्वकृत पुण्य के आधीन है। इसमें वर्तमान का पुरुषार्थ कुछ भी काम नहीं आता। अज्ञान के कारण लोग ऐसा मानते हैं कि छल-कपट और

बेइमानी के कारण अधिक से अधिक धन इकट्ठा किया जा सकता है; परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वर्तमान में छल-कपट व बेईमानी से जो धन आता हुआ हमें दिखाई देता है वह वास्तव में छल-कपट व बेईमानी के कारण न आकर पूर्व में किये गये किन्हीं अच्छे कार्यों के फल में आता है। वर्तमान के छल-कपट व बेईमानी का फल तो हमें आगामी किसी काल में भुगतना पड़ेगा, जिसके फल में हमें कंगाल होना पड़ेगा।''

धन के आने अथवा न आने के साथ वर्तमान के पुरुषार्थ का कुछ भी संबंध नहीं है, इस बात को सिद्ध करने के लिए तर्क प्रस्तुत करते हुए कोई अन्य विद्वान कहता ह्न ''कोई व्यक्ति जन्म से ही एक लखपति बाप के यहाँ पैदा होता है। बताइये ह्न लखपति होने के लिए वर्तमान में उसने कौन-सा पुरुषार्थ किया ? इसी तरह से हमारे देखने में यह भी अक्सर आता रहता है कि कई व्यक्ति तो ऐसे होते हैं, जो धन प्राप्त करने के लिए कड़ी से कड़ी मेहनत करते हैं तथा अन्य भी धन प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं, फिर भी धन प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यहाँ तक कि अपने लिए दो टाइम की रोटियाँ भी पूरी तरह से नहीं जुटा पाते। इसके विपरीत कितने ही व्यापारी ऐसे होते हैं जो ईमानदारी से व्यापार करते हुए भी समान्य प्रयत्न से मालामाल हो जाते हैं। इन सब बातों को देखते हुए यहाँ अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि धन प्राप्ति में वर्तमान का पुरुषार्थ कुछ भी काम नहीं आता।''

करोड़ीमलजी के कानों में भी ये बातें कभी-कभी पड़ती रहती थीं; परन्तु उन्हें इन बातों से कोई सारोकार नहीं था। उनके लिए तो ये सब बातें व्यर्थ की बकवास थीं।

वे सोचते ह्न ''बिना प्रयत्न किए अपने-आप धन कैसे आ जायेगा ? कमायेंगे नहीं तो करोड़पति कैसे बन जायेंगे ? हूँ, हूँ ! उन्हें तो अपने स्वयं के पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही वर्तमान में धन आता हुआ स्पष्ट दिखाई दे रहा था, वे उपदेश कर्ताओं की बात को सत्य कैसे मान लेते।

एक दिन अमावस की काली रात्रि को लगभग १.३० बजे नौ काले साये सड़क पर घूम रहे थे। सबसे आगेवाले साये के हाथ में तीन सेलों के प्रकाशवाली टार्च थी, जिसको वह कभी-कभी जला लिया करता था। सभी व्यक्तियों ने काले रंग के कपड़े पहन रखे थे। लगभग सभी व्यक्तियों के पास अलग-अलग किस्म के हथियार नजर आ रहे थे। किसी के हाथ में लाठी थी तो किसी के हाथ में तलवार, किसी के हाथ में छुरा था तो किसी के हाथ में भाला। सबके चेहरे काले कपड़े से ढके हुए थे, मात्र आँखों एवं मुँह के आगे का कुछ भाग खुला हुआ था।

उन व्यक्तियों को देख-देखकर कुत्ते भोंकने लगते, परन्तु वे कुछ ही देर भोंकते। उनके थोड़ी दूर निकल जाने पर कुत्ते भोंकना बन्द कर देते।

वे व्यक्ति चलते-चलते एक अन्धेरी गली में घुस गये, अंधेरे के कारण वे पुन: सायों के रूप में बदल गये थे। साये चलते-चलते एक मकान के पिछवाड़े में जाकर रुक गये। एक कुत्ता उनको देखकर जोर-जोर से भोंकने लगा, परन्तु किसी भी साये ने उसको दुत्कारा नहीं। एक साये ने अपने कन्धे में टंगी हुई थैली में से कुछ निकालकर उस कुत्ते की तरफ फैंक दिया। शायद वह कोई खाने की कोई वस्तु थी। कुत्ता उस वस्तु की तरफ झपटा और उसे खाने में तल्लीन हो गया।

साये वहाँ खड़े-खड़े कुछ देर तक उस मकान के पिछवाड़े का निरीक्षण करते थे। लाइटवाला साया लाइट को जला-जलाकर जब अच्छी तरह से मकान का निरीक्षण कर चुका तो उसने एक दूसरे साये को अपने करीब बुलाया और उसे कुछ समझाने लगा। कुछ देर बाद दूसरे साये ने अपने कंधेवाली थैली में से एक छोटा-सा औजार निकाल लिया। यह एक अत्यन्त ही पैनीधार वाला मजबूत फरसा था। फरसे को थामे हुए वह साया मकान के पिछवाड़े के दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया और दरवाजे के बीचों-

बीच जहाँ अन्दर की ओर सांकल लगी हुई थी, उसी के दरवाजे के पासवाली दीवार को खोदकर मकान में घुस गया। धम-धम की हल्की-हल्की आवाज रात्रि के सन्नाटे को भंग करने लगी। आवाज इतनी तेज नहीं थी कि जिसके कारण आसपास के घरों के अन्दर सोनेवाले लोग जाग सकें। इसी बीच दो-तीन सायों को छोड़कर शेष साये कुछ दूरी पर इधर-उधर बिखर गये और चौकन्नी नजरों से आसपास के वातावरण का निरीक्षण करने लगे।

लगभग पन्द्रह-बीस मिनट बाद मकान के अन्दर से एक साया वापस बाहर आया। उसके हाथ में तीन-चार भारी पोटलियाँ थीं। उसने वह पोटलियाँ बाहर खड़े हुए एक अन्य साये के हाथों में थमा दीं और वापस वह अन्दर चला गया। उस साये को वापस अन्दर गये हुए अभी मुश्किल से पाँच मिनट ही होने पाये थे कि तभी अन्दर से किसी वस्तु के धम से गिरने की आवाज सुनाई दी और धम की आवाज से कुछ ही क्षणों बाद अन्दर से किसी के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी।

''अरे ! दौड़ो-दौड़ो; चोर, चोर, चोर, चोर। चिल्लानेवाला व्यक्ति चिल्लाता हुआ वापस अपने घर के अन्दर भागा। इसी बीच उसके परिवार के अन्य सदस्य भी जाग चुके थे। अन्दर जाकर उसने अपने धन के सारे डिब्बे खाली पाये तो वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा ह्र हाय ! मेरा सारा धन चोर ले गये, हाय ! मेरा स्वप्न ही अधूरा रह गया। अरे ! दौड़ो रे ! दौड़ो!

सेठ करोड़ीमलजी और उनके परिवारवालों की चीख पुकार सुनकर मोहल्ले भर के लोग उनके घर में इकट्ठे हो गये और उन्हें उठाकर अविलम्ब अस्पताल ले गये। करोड़ीमल का एक हाथ टूट चुका था तथा सिर से खून बह रहा था।

कुछ दिनों में करोड़ीमलजी का हाथ तो ठीक हो गया, सिर का घाव भी भर गया; पर अब वे पुन: सड़क पर आ चुके थे, उनका स्वप्न भंग हो चुका था।

करोड़ीमलजी के सामनेवाले धार्मिक स्थान में अब भी त्यागी-तपस्वी एवं विद्वान अक्सर आते रहते थे और धन के स्वरूप पर और उसके स्वतंत्र परिणमन पर प्रकाश डालते रहते थे, पर करोड़ीमलजी फिर से लखपति बनने के स्वप्न देखने लगे थे।

किन्तु अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी करोड़ीमलजी पुन: लखपति नहीं हो पाये, हाँ उनके मकान की छत अवश्य गायब हो गयी। कंगाली के कारण उनके मकान के दरवाजे, अलमारियाँ एवं खिड़कियाँ अवश्य बिक गये।

और एक दिन ह्र ''धन की व्यवस्था मै अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता हूँ।'' इसी मान्यता को अपने साथ में लिये अपने घर की बची-खुची दीवारों को भी छोड़कर वे परलोक में गमन कर गये। ◻

जीवन सुखी कैसे होगा ?

तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ अज्ञानीजनों के पास लौकिक सुखाभासों की एक लम्बी लिस्ट होती है, जिनकी पूर्ति का वे जीवन भर असफल प्रयास करते रहते हैं; परन्तु उनकी इच्छानुसार इनकी नकभी पूर्ति हुई है, न होने की सम्भावना ही है। कदाचित् भाग्योदय से पूर्ति हो भी जाय तो भी जब वे संयोग स्वयं सुख स्वरूप एवं सुखदाता हैं ही नहीं तो उनकी पूर्ति से जीवन सुखी होगा कैसे ? इस सन्दर्भ में मोक्षमार्ग-प्रकाशक में आया पण्डित टोडरमलजी का कथन द्रष्टव्य है, जिसका सारांश यह है ह्र

''दु:ख का लक्षण आकुलता है और आकुलता इच्छा होने पर होती है। इन संसारी जीवों की इच्छाएँ अनेकप्रकार की पायी जाती हैं, जिनकी पूर्ति त्रिकाल संभव नहीं है।''

सुखी जीवन, पृष्ठ - १८०

मिस्टर रूपप्रकाश

पच्चीस वर्षीय उस युवक को बाथरूम में घुसे हुए पच्चीस मिनट हो चुके थे, फिर भी वह बाहर निकलने का नाम ही नहीं ले रहा था। सात बार तो वह अपने शरीर पर सुगन्धित साबुन लगा चुका था, फिर भी उसे सन्तोष नहीं हो रहा था। बाहर से आवाजें लग रही थीं ह्र भाई ! दूसरों को भी तो निबटना है, जल्दी करो, ये भी कोई नहाना है ?.......ठीक ३० मिनट बाद साहब निकले, फिर पन्द्रह मिनट तक अपने शरीर को तौलिए से रगड़ते रहे। लगभग ३० मिनट और इत्तर के फुलेल लगाने एवं आइने के सामने सजने-संवरने में लगे, तब कहीं बन-ठन कर तैयार हो पाए बाबूजी। एक बार फिर से उसने अपने आपको पांवों से सिर तक आइने में निहारा तथा अपने शारीरिक सौन्दर्य को देखकर एक विचित्र-सा रूपमद का भाव उसके चेहरे पर उभर आया।

कॉलेज भर के लड़कों में मेरे समान सुन्दर और है ही कौन ? लड़कों में सबसे ज्यादा रूपवान वह था और लड़कियों में सबसे ज्यादा रूपवती थी रूपकिरण। उसके सुन्दर रूपवान शरीर को देखकर ही तो रूपकिरण उसकी ओर आकर्षित हुई थी। एक दिन वह अपने स्कूटर पर सवार होकर कॉलेज की ओर जा रहा था कि उसे रास्तें में अकेली कॉलेज की ओर जाती हुई रूपकिरण दिखाई दी। रूपकिरण के पास ही स्कूटर को रोकते हुए बोला ह्र हैलो रूपकिरण!''

उत्तर में रूपकिरण ने कहा ह्र ''बोलो रूपप्रकाश !''

रूपकिरण से उसे अपने ऐसे सम्बोधन की आशा न थी; क्योंकि अबतक उसे सिर्फ 'रूप बाबू' ही कहा करती थी। इस नये सम्बोधन से उसका साहस

बढ़ा और वह उसकी आँखों की ओर झांकते हुए बोला ह्न ''क्या बात है रूप की रानी रूपकिरण ? क्या तुम मुझसे नाराज हो गयी हों ? बहुत दिनों से मुलाकात ही नहीं हुई ?

''नहीं रूपप्रकाश ! ऐसी तो कोई बात नहीं है।'' रूपकिरण ने कहा।

''तब फिर बात क्या है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम पर किसी ने जादू कर दिया हो ? मन ही मन सोचता है ह्न क्या मुझसे भी बढ़कर और कोई आकर्षक व्यक्ति से इसका परिचय हो गया है। क्या मुझसे भी सुन्दर....''

''देखो मिस्टर रूपप्रकाश ! तुम्हें ऐसा कहते हुए शर्म नहीं आती ? किसी व्यक्ति ने तो मेरे ऊपर कोई जादू नहीं किया है, पर कुछ दिनों से तत्त्वज्ञान का जादू अवश्य असर करने लगा है। अत: दोनों टाइम मन्दिर प्रवचन में जाने के कारण मुझे कहीं जाने-आने का समय नहीं मिला और तुम्हारी बातों से तो मुझे ऐसा लगता है कि रूप के मद ने तुम्हें अंधा-सा बना दिया है, तुम्हें अपने रूप का घमण्ड हो गया है।'' वह हल्की हँसी हँसते हुए बोली।

''नहीं, नहीं, इसमें घमण्ड का क्या सवाल है ?'' उसने झेंप मिटाते हुए स्पष्टीकरण किया।

जिस सुन्दर शरीर पर तुम्हें इतना अभिमान है, उस शरीर का वास्तविक स्वरूप क्या है ह्न यह भी तुमने कभी सोचा ?'' वह उसकी ओर तेज नजरों से देखते हुए कहने लगी।

''अरे ! इस भरी जवानी में तुम भी धर्मात्माओं के समान कैसी बहकी-बहकी धर्म की बातें करने लगीं।'' रूपप्रकाश ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा।

''देखो रूपप्रकाश ! धर्म सिर्फ बुढ़ापे में ही करने की वस्तु नहीं है, क्योंकि क्या पता बुढ़ापा आ भी पायेगा या नहीं। अत: धर्म तो जन्म से ही

जीवन में उतारने की वस्तु है। धर्म तो सुख और शान्तिमय जीवन जीने की एक उत्कृष्ट कला है, परम औषधि है। विश्व और उसकी व्यवस्था को समझने के लिए धर्म हमें एक विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण देता है। धर्म में अन्धविश्वास और पोपडमों को कोई स्थान नहीं है, जैसाकि तुम जैसे अधिकतर लोग समझते हैं तथा धर्म के नाम पर अंधविश्वास और पोपडमों का सेवन करते हैं।''

''अरे ! बस, रहने दो ये धर्म-कर्म की बातें। तुम भी अभी ये बातें कहाँ से ले बैठीं, सारा मूड ही खराब कर दिया। चलो बैठो ! रूपप्रकाश अपने स्कूटर की पिछली सीट की ओर इशारा करते हुए बोला।

''नहीं बस, तुम जाओ, मैं तो पैदल ही चली जाऊँगी।''

''क्या ! तुम मेरे साथ बैठकर नहीं चलोगी ?''

''अच्छा, मैं चलूँगी, पर तुम्हें मेरी एक शर्त स्वीकार करनी होगी।''

''बोलो !''

''आज रात को ८ बजे तुम्हें मेरे साथ मन्दिर में चलना होगा। वहाँ आज इस शरीर के वास्तविक स्वरूप पर ही विश्लेषण किया जाने वाला है। बोलो चलोगे ?

''ओ हो ! अच्छा बाबा चलूँगा।''

वे दोनों स्कूटर पर बैठकर वहाँ से रवाना हो गये, पर रूपप्रकाश रास्ते भर यही सोचता रहा कि रूपकिरण को अचानक यह हो क्या गया ? कहीं किसी के दूसरे प्रभाव में तो नहीं आ गयी यह! पर ....नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? ऐसा लगता है कि धार्मिक विचारधारा ही इसके दिमाग में घर कर गयी है।

रात को ठीक ८ बजकर १० मिनट पर उन दोनों ने साथ-साथ मन्दिर में

प्रवेश किया। रूपकिरण भगवान के आगे हाथ जोड़ती हुई उधर को चली गई जहाँ प्रवचन चल रहा था। रूपप्रकाश भी उसकी देखा-देखी भगवान के आगे हाथ जोड़ता हुआ पुरुषों की सभा में एक ओर जाकर बैठ गया। उसने वहीं बैठे-बैठे अपनी एक नजर उपदेश कर रहे विद्वान पर डाली। विद्वान को देखते ही उसकी आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गयीं। अद्भुत सुन्दर रूपवान था वह नवयुवक विद्वान। उसकी सुन्दरता को देखकर रूपप्रकाश मन ही मन जल उठा। विद्वान की सुन्दरता के आगे उसे अपनी सुन्दरता फीकी लगने लगी। पर शीघ्र ही उसने आपको संयत कर लिया और विद्वान महोदय की बातों को ध्यान से सुनने लगा।

विद्वान महोदय शरीर के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए समझाते जा रहे थे। ''जिस शरीर को हम अपना रूप जानकर एवं उसे ही अपना स्वरूप मानकर हम उसमें रच-पच रहे हैं, जिस शरीर को ही सजाने और सँवारने में हम अपना अधिकाधिक समय बर्बाद करते रहते हैं, जिस शरीर के प्रति हमें इतना अनुराग है, उस शरीर का वास्तविक स्वरूप क्या है ह्न क्या यह भी हमने कभी सोचा ? ऊपर-ऊपर से सुन्दर और रूपवान लगनेवाले इस शरीर के अन्दर क्या-क्या वस्तुएँ भरी हैं ह्न क्या हमने कभी यह भी सोचा ?

यदि हम थोड़ा ज्ञाननेत्रों को खोलकर जरा उस ऊपरी सुन्दर परत से दृष्टि हटाकर अन्दर की परतों को देखें तो सब कुछ साफ-साफ दिखाई देगा कि शरीर के अन्दर गन्दगी भरी हुई है। शरीर के अन्दर खून, माँस, हड्डियाँ, नसें, पीप तथा मलमूत्र आदि गन्दी वस्तुएँ दिखाई देंगी।

यह शरीर तो बदबू का घर है। शरीर के मलद्वार से निरन्तर बदबूदार हवा निकलती रहती है। कान, नाक तथा मुँह में भी बदबू भरी हुई है। सम्पूर्ण ही शरीर से निरन्तर बदबू आती रहती है एवं पसीना बहता रहता है। पवित्र से पवित्र वस्तु भी इस शरीर के संयोग में आते ही मलिन हो जाती है।

भोजन चाहे कितना भी सुन्दर क्यों न हो, पर मुँह के अन्दर जाते ही मलिन हो जाता है। मुँह के अन्दर डाले हुए कौर को यदि फिर से हथेली पर निकाल कर देखा जाय तो देखते ही ग्लानि उत्पन्न होती है। चाहे कितने ही सुन्दर कपड़े क्यों न पहने हों, पर शरीर के संयोग में आते ही बदबू एवं पसीनेदार हो जाते हैं। इस शरीर के एक अंगुल में जितने भाग में ९६ रोग निवास करते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख, पिच्चानवै हजार पाँच सौ चौरासी रोग निवास करते हैं। इसप्रकार यह शरीर रोगमूर्ति है, अत्यन्त अपवित्र है तथा ज्ञाता-दृष्टारूप यह आत्मा जो कि हम स्वयं हैं, वह परमपवित्र है, ज्ञान का घर है, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है।

जिसतरह से सर्प को चाहे कितना भी दूध क्यों न पिलाया जावे तो भी वह हरसमय जहर ही उगलेगा, इसीतरह से इस शरीर को चाहे कितने ही सुन्दर-सुन्दर पकवान, फल, मेवे आदि पदार्थ क्यों न खिलाये जावें तथा इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों से श्रृंगारित क्यों न किया जावे तो भी यह तो हर समय मलिन पदार्थ ही उगला करेगा।

इसप्रकार इस शरीर का ऐसा स्वरूप होते हुए भी जानने देखनेवाला आत्मा अज्ञान के कारण शरीर के प्रति ममत्व किया करता है, अनुराग किया करता है। अपवित्र शरीर के प्रति किया गया यह ममत्व एवं अनुराग उसीतरह बार-बार शरीर धारण करने का कारण है, जिसतरह से जिसको वस्त्रों के प्रति ज्यादा ममत्व होता है वह बार-बार बदल कर वस्त्र धारण करता है।

ऐसा होते हुए भी इस अपवित्र शरीर के अन्दर रहनेवाला आत्मा तो अत्यन्त पवित्र है, ज्ञान और आनन्द के प्रकाश का पुन्ज है। भगवान स्वरूप है और वह भगवान आत्मा ही तू स्वयं है वही तेरा वास्तविक स्वरूप है। ऊपर-ऊपर से रूपवान दिखनेवाला यह शरीर तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं

है ।....''

विद्वान महोदय की एक-एक बात को रूपप्रकाश ध्यान से सुन रहा था कि अचानक न मालूम कैसे उसका ध्यान रूपकिरण की ओर चला गया जो महिलाओं की सभा में सबसे आगे बैठी हुई प्रसन्नचित्त मुद्रा से विद्वान महोदय के विश्लेषण को ध्यानपूर्वक सुन रही थी। उसी समय समझाते-समझाते यकायक विद्वान महोदय की नजरें भी रूपकिरण के ऊपर जा पड़ीं। रूपप्रकाश ने जब यह देखा तो वह एकदम मन ही मन जल उठा। एक विचित्र शंका ने उसके मन में घर कर लिया। उसे ऐसा लगने लगा कि रूपकिरण इस सुन्दर रूपवान विद्वान महोदय के आकर्षण में आ गयी है और इसी कारण से उसका आकर्षण उसके प्रति कम हो गया है।

फिर क्या था ? वह मन ही मन एक अद्भुत बैचेनी से पीड़ित हो गया। उसका खून खोलने लगा। वह मन ही मन बड़बड़ाया — 'हूँ, तो यह रूपकिरण इस रूपवान विद्वान के चक्कर में फंसकर मेरे से दूर-दूर रहने लगी है।' इस समय उसका चेहरा क्रोध और घ्रणा से लाल-पीला हो रहा था।

सभा के बिखरते ही रूपप्रकाश तेज-तेज कदमों से चलता हुआ मन्दिर से कुछ दूर सड़क पर एक ओर खड़ा होकर रूपकिरण के आने का इन्तजार करने लगा। रूपकिरण जब वहाँ से गुजरने लगी तो वह क्रोधित होते हुए गुर्राया।

''रूपकिरण !''

रूपकिरण ने जब रूपप्रकाश को सड़क के एक ओर क्रोधित मुद्रा में खड़े हुए देखा तो बोली ''हैलो रूपप्रकाश ! अरे तुम तो क्रोधित दिखाई दे रहे हो ? ऐसा क्या हो गया ?''

''यह पूछो कि क्या नहीं हुआ ? क्या अपने इस सुन्दर रूपवान विद्वान को दिखाने के लिए ही तुम मुझे यहाँ मन्दिर लेकर आयी थीं। याद रक्खो

रूपकिरण ! तुम उस विद्वान के सुन्दर रूप को देखकर प्रभावित तो हो गयी हो ! पर मेरा रूप लावण्य उसके रूप से कई गुना बेहतर है, मेरी सुन्दरता की बराबरी कोई नहीं कर सकता।'' वह एक-एक शब्द पर जोर देते हुए क्रोध भरे स्वर में बोला।

''देखो रूपप्रकाश ! तुम्हें गलतफहमी हुई है। न तो मुझे विद्वान के रूप-लावण्य ने प्रभावित किया है, न ही तुम्हारे रूप-लावण्य ने। हाँ धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर इन दिनों मैं प्रभावित अवश्य हुई हूँ। शरीर में प्रभावित होने जैसा है ही क्या ? यह तो महान अपवित्र वस्तु है। क्या तुमने अभी इस शरीर के बारे में विद्वान के मुख से कुछ सुना नहीं ?'' वह शान्तिपूर्वक समझाते हुए बोली।

''बातें मत बनाओ रूपकिरण ! साफ-साफ क्यों नहीं कह देती कि न तो मैं तुम्हारें सुन्दर शरीर से प्रभावित हुई हूँ, न ही धर्म के स्वरूप से, बल्कि मैं तो उस सुन्दर विद्वान से प्रभावित हो चुकी हूँ, पर याद रखो रूपकिरण ! मेरे सिवाय किसी भी माई के लाल में ऐसी ताकत नहीं, जो तुम्हें ब्याहकर अपने घर ले जावे। यदि तुम्हारी शादी होगी तो सिर्फ मेरे साथ, समझी !''.. वह क्रोधित होता हुआ चिल्लाया और फिर तेज कदमों से चलता हुआ वहाँ से चला गया। उसे जाते हुए देखकर रूपकिरण के मुख से निकल पड़ा —

''पागल कहीं का, न मालूम कैसे इस मदान्ध से पाला पड़ गया'' वह बड़बड़ाई। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि अब इसकी संगति वह कभी नहीं करेगी।

इस समय पलंग पर लेटा हुआ रूपप्रकाश द्वेष की आग में जल रहा था। सुन्दर रूपवाला विद्वान उसे कांटे की भांति खटक रहा था। रूपकिरण अब उसकी नहीं बन सकेगी इसी चिन्ता से वह चिन्तित हो उठा था। अन्दर ही अन्दर बहुत बैचेनी का अनुभव कर रहा था वह। क्या रूपकिरण मेरी

नहीं हो सकेगी ? नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? रूपकिरण तो मेरी अमानत है। रूपकिरण पर तो रूपप्रकाश का ही अधिकार हो सकता है। मैं उसे किसी दूसरे की नहीं होने दूँगा। कुछ न कुछ उपाय तो अवश्य ढूँढना होगा। पर क्या उपाय हो सकता है ? हाँ, एक उपाय है। 'ते.......जा.....ब, ते.......जा.....ब'। वह बड़बड़ाया और फिर एक ही झटके के साथ वह पलंग से उठ खड़ा हुआ। एक बहुत क्रूर विचार इस समय उसके मस्तिष्क में हलचल कर रहा था। वह फिर बड़बड़ाया ह्न ''विद्वान के सुन्दर रूप को कुरूप करने का एक यही उत्तम उपाय है।'' वह रूप का अभिमानी इस बात को सहन नहीं कर सका कि उससे भी बढ़कर ज्यादा रूपवान कोई दूसरा हो। अपने रूप के मद में वह पूरी तरह से अन्धा हो चुका था।

जब वह बाजार से हाथ में बोतल लिए लौटा तब रात्रि के १२ बज चुके थे। उस बोतल को अपने पलंग के पास ही रेक पर रख लिया और वह पलंग पर लेट गया। लेटे-लेटे ही वह षडयन्त्र को क्रियान्वित करने का प्लान बनाने लगा। कल रात्रि को १ बजे मन्दिर से वापस जाते हुए वह शास्त्रीजी का मुखौटा बिगाड़ेगा। उसने ऐसा निश्चय कर लिया। धीरे-धीरे उसे नींद आ गई। वह अपने कमरे का दरवाजा बन्द करना भूल गया।

रात्रि के लगभग तीन बजे खटखट की आवाज से उसकी नींद खुल गई। उसने अपनी आँखें मसलते हुए चारों ओर देखा तो अपने पलंग के ऊपर ही दीवाल में बनी हुई उस रेक पर एक बिल्ली कुछ खुसर-पुसर करते हुए दिखाई दी। उसने बिल्ली को सबक सिखाने के लिए पास ही पड़ा जूता उठा लिया और लेटे-लेटे ही थोड़ा-सा घूम कर वह जूता बिल्ली की ओर जोर से फैंका। बिल्ली तो बच निकली, भागती हुई बिल्ली तेजाब की बोतल गिराती चली गयी। बोतल उछलती हुई पास ही पड़ी टेबल से टकराती हुई रूपप्रकाश के चेहरे से जा टकराई। सारा ही तेजाब रूपप्रकाश के चेहरे पर

जा पड़ा। तेजाब के गिरते ही वह जोर से चीख पड़ा ''हाय........बचाओ रे बचाओ, मैं जल गया, मर गया।''

फिर क्या था, कल का सुन्दर रूपवान शरीर का स्वामी रूपप्रकाश अब रूपप्रकाश न रहकर कुरूपप्रकाश के रूप में परिवर्तित हो चुका था। बार-बार दर्पण में अपने सुन्दर रूप को देख-देखकर इठलाने वाला रूपप्रकाश अब दर्पण के सामने जाने से भी कतराता था। उसके मद ने अब दीनता का रूप ले लिया था। उसका भयावना चेहरा रात्रि में किसी को भी डरा देने के लिए पर्याप्त था। मात्र ऊपर-ऊपर से ही सुन्दर दिखाई देनेवाला उसका शरीर अब ऊपर से भी अपवित्र एवं घिनावना दिखाई देने लगा था और इसीलिए अब उसने कॉलेज जाना भी छोड़ दिया था। पर धीरे-धीरे सब सहज हो गया। यदा-कदा जब बाजार में जाना होता तो उसे इस बात का डर बना रहता कि कहीं रूपकिरण से उसकी मुलाकात न हो जाये। यदि रूपकिरण ने कहीं मुझे ऐसी हालत में देख लिया तो........। पर वाह री किस्मत ! एक दिन अनायास ही उसकी रूपकिरण से मुलाकात हो गयी। उसे सामने से आती हुई रूपकिरण दिखाई दी तो उससे आँखे बचाते हुए भीड़ में कहीं छुप जाना चाहता था। रूपकिरण पहले तो उसे पहचान न सकी, अत: आगे निकल गयी, पर न मालूम कैसे अनायास ही वह रूपप्रकाश को पहचान गयी। उसने पीछे मुड़ते हुए रूपप्रकाश को आवाज दी।

''अरे ! रूपप्रकाश !''

न चाहते हुए भी रूपप्रकाश रुकने के लिए मजबूर हो गया। वह रुका तो रूपकिरण उसके नजदीक आते हुए आश्चर्य से बोली : ''अरे ! रूपप्रकाश तुम ? यह क्या हो गया तुम्हें ?''

रूपप्रकाश की आँखे शर्म के मारे नीचे झुकी जा रही थीं। वह कुछ भी बोल न सका। मात्र होंठ ही हिलकर रह गये उसके, पर रूपकिरण ने दुबारा

पूछा तो उसने सारी हकीकत बतला दी। तब रूपकिरण उसे सांत्वना देती हुई समझाने लगी ह्र

''वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् भी कोई कभी किसी दूसरे का अहित नहीं कर सकता, मात्र दूसरे का अहित करने के परिणाम (विचार) ही कर सकता है और ऐसे खोटे विचारों से स्वयं का अहित कर लेता है। स्वयं के लिए ही बुरे कर्मों का संचय कर लेता है और फिर कभी-न कभी तो इसका फल स्वयं को भुगतना ही है। दूसरे का बुरा होना, न होना यह तो उसके किस्मत के आधीन है। तुमने विद्वान का बुरा करने का विचार करके उसी समय अपने लिए अशुभ कर्मों का संचय कर लिया। उसका फल तो तुम्हें कभी न कभी मिलना ही था। अच्छा हुआ कि उसका फल तुम अभी ही भुगत चुके। पर अब तुम्हें अस शरीर को देख-देखकर चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। शरीर का स्वरूप ही ऐसा है। यह शरीर तुम्हारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। शरीर के अन्दर निवास करने वाली आत्मा का ज्ञान-प्रकाश ही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है रूपप्रकाश।

रूपप्रकाश ! तुम रूपप्रकाश नहीं, ज्ञायकप्रकाश हो। ज्ञान ही तुम्हारा वास्तविक रूप है। शरीर न तो सुन्दर है, न ही असुन्दर। शरीर को असुन्दर तो किसी प्रयोजनविशेष की पूर्ति के लिए ही बताया जाता है।

रूपप्रकाश सिद्धान्त तो बहुत हैं, पर इन सभी सिद्धान्तों को मैं यहाँ खड़े-खड़े तो तुम्हें समझा नहीं सकती। सुनो, मैंने उन्हीं ब्रह्मचारी विद्वान महोदय से आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया है। मैं रोजाना रात्रि को मन्दिरजी में उपदेश देने का कार्य करती हूँ। तुम्हें भी चाहिए कि तुम वहाँ रोजाना बराबर उपस्थित होकर धर्म के सिद्धान्तों को समझो। बोलो, आओगे ?''

''मैं अवश्य आऊँगा'' उसके मुख से सहज ही निकल पड़ा। मात्र मुख से ही नहीं निकला, बल्कि उसने मन ही मन पक्का निश्चय कर लिया मन्दिर में रोजाना उपदेश सुनने का। उसको आज यह विशेष बात जानकर भी कुछ तसल्ली हुई कि रूपकिरण उसकी नहीं हुई तो किसी दूसरे की भी नहीं हुई, ब्रह्मचारिणी बन गई।

वक्त-वक्त की बात। जो रूपप्रकाश कभी अपने सुन्दर रूपवान शरीर को देखकर इठलाता फिरता था तो कभी अपने मलीन कुरूप शरीर को देखकर दीन-हीन फिरता था, वही रूपप्रकाश आज शरीर से भिन्न ऐसे अपने निर्वाणस्वरूप ज्ञायकतत्त्व का आश्रय प्राप्त करके निरभिमानता रूप से परिणमित हो रहा था। रूपप्रकाश अपने ज्ञायक तत्त्व के आश्रय से ज्ञानप्रकाश बनकर साम्य सुधा रस से भरा हुआ एक अलौकिक जीवन जी रहा था।

□

गम्भीर, विचारशील और बड़े व्यक्तित्व की यही पहचान है कि वे नासमझ और छोटे व्यक्तियों की छोटी-छोटी बातों से प्रभावित नहीं होते, किसी भी क्रिया की बिना सोचे-समझे तत्काल प्रतिक्रिया प्रगट नहीं करते। अपराधी पर भी अनावश्यक उफनते नहीं हैं, बड़बड़ाते नहीं हैं; बल्कि उसकी बातों पर, क्रियाओं पर शान्ति से पूर्वापर विचार करके उचित निर्णय लेते हैं, तदनुसार कार्यवाही करते हैं और आवश्यक मार्गदर्शन देते हैं।

ह्र इन भावों का फल क्या होगा, पृष्ठ - **३८**

घोंसला

दर्शनमोह नामक पक्षी ने लम्बे समय से अपना घोंसला जमा रक्खा था। उसके तीन बच्चे थे। बड़े बेटे का नाम मिथ्यात्व था, मंझले बेटे का नाम मिश्रमोह और तीसरे का नाम था सम्यत्वमोह। अपने तीनों बच्चों को अकेला छोड़कर वह पक्षी रोजाना दिन को दाने चुगने चला जाया करता था। एक दिन की बात है, जब वह पक्षी अपने बच्चों के लिए दाना लेकर शाम को अपने घोंसले में पहुँचा तो क्या देखता है कि उसके तीनों बच्चे काफी चिन्तित दिखाई दे रहे हैं। अपने बच्चों को चिन्तित देखकर उसने पूछा ह्न

''क्या बात है बच्चो ? आज तुम इतने चिन्तित दिखाई दे रहे हो ? कुछ हुआ है क्या ?''

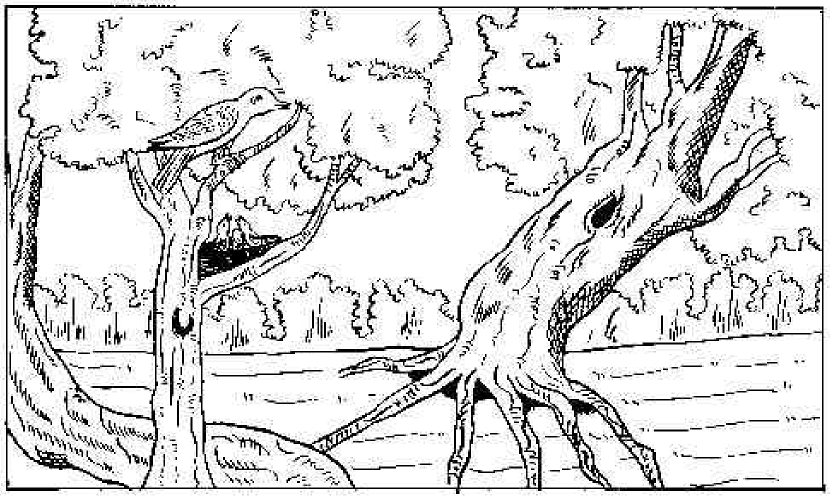

है।'' ह्न बड़ा

।

जमा रक्खा है,

भी उत्पन्न हुए

हुए हैं? जरा

ारों को सुनाते

हुए बोला ह्न चैतन्य मन ही मन कर रहा था कि ''मैं कबतक इन दुष्ट पक्षियों का बोझ सहन करता रहूँगा ? ये दुष्ट पक्षी न मालूम कब से मेरे ऊपर डेरा जमाये हुए हैं। इन पक्षियों को दूसरे की सत्ता पर कब्जा करने का क्या अधिकार

है ? क्या इन पक्षियों को रहने के लिए कोई दूसरी जगह नहीं मिलती, जो मेरे ही ऊपर अधिकार जमाये हुए हैं। ये दुष्ट पक्षी सदैव मुझे कलंकित करते रहते हैं। मेरे ही ऊपर बीट रहते हैं, पेशाब करते हैं, घास-पूस कचरा जमा करते रहते हैं। मेरे गुणरूपी फलों का भक्षण करते रहते हैं। इतना सब कुछ करने के बावजूद भी इन दुष्ट पक्षियों ने दु:ख और परेशानियों के सिवाय मुझे आज तक दिया ही क्या ? अब मैं इन दुष्ट पक्षियों को भगा के ही रहूँगा। अब ये मेरे ऊपर अधिक समय तक डेरा जमाये नहीं रह सकते हैं।.........''

''ओ हो ! यह तो सचमुच ही हमारे लिए खतरे की बात है।'' अपने बेटे के मुख से चैतन्य वृक्ष के विचार सुनते हुए पक्षी बीच में ही चिन्तित होकर बोल उठा।

उसका बेटा मिथ्यात्व, चैतन्य-वृक्ष के विचार आगे सुनाता ही जा रहा था ह्न ''पर ये दुष्ट पक्षी भागते भी तो नहीं। इनको भगाना कैसे हो ? इनको भगाने के उपाय तो मैंने पहले भी बहुत किये। इनको भगाने के लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया ? मंत्र-तंत्र किये, शुद्ध प्रासुक आहार किया, व्रत-तप किये, दान भी दिल खोलकर दिया, गुरु की सेवा-उपासना भी बहुत की;

पर वे भी मेरे इन दुष्ट शत्रुओं को नहीं भगा सके। मेरे से ही शायद कुछ कमी रह गई हो उनकी सेवा-उपासना में। खैर ! ये सब क्रियाएँ फिर से बड़े उत्साह के साथ अंगीकार करता हूँ। अब की बार ये शायद भाग जावें।''

अपने बेटे के मुख से चैतन्य-वृक्ष के आगे के विचार सुनकर पक्षी ने चैन की सांस ली। वह निश्चित होते हुए बोला ह्न बच्चों ! तुम तो बैफ्रिक रहो। चिन्ता की कोई बात नहीं है। वह अपना कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। यह हमको भगाना तो चाहता है, पर हमें भगाने के सच्चे उपाय को नहीं जानता। पर सुनो ! अब से रोजाना बराबर इसके विचारों को तुम नोट करते रहना, क्योंकि यह हमें भगाना चाहता है तो संभव है यह हमारे भगाने के सच्चे उपाय को भी कहीं से हासिल कर ले।''

''तुम ठीक कहती हो माँ ! आज से मैं बराबर इसके विचारों का ध्यान रक्खा करूँगा।'' बड़ा बेटा मिथ्यात्व बोला।

''माँ हम भी इसके विचारों का बराबर ध्यान रक्खेंगे।'' बाकी के दोनों बच्चे सिर हिलाते हुए बोले।

दूसरे दिन शाम को पक्षी ने घर आते ही सबसे पहले चैतन्य-वृक्ष के विचारों को ब्यौरा पूछा तो मिथ्यात्व बोला ह्न ''निश्चिन्त रहो माँ ! आज तो ये सारे दिन गुरु के आगे गिड़गिड़ाता ही रहा कि हे गुरुवर ! आप मेरे मिथ्यात्वरूपी पक्षियों को भगा दो, मेरा बेड़ा पार लगा दो, मेरे दु:खों को दूर करने में आप ही समर्थ हो।''

''अच्छा बेटा, ये बात है ?'' पक्षी खुश होते हुए बोला।

''हाँ माँ हाँ, और आगे तू सुन तो सही। इसके गुरुवर इसको जब अपनी बात सुनाने लगे कि 'बेटा ! तुम्हारी प्रार्थना तो मैंने बहुत सुन ली, अब तुम मेरी बात भी तो सुनो' तो यह मूर्ख इतना सुनते ही गुरु के चरणों में लोट पड़ा और लोटते हुए गिड़गिड़ाया ह्न 'हे गुरुवर ! मैं तो कुछ भी नहीं

जानता। मैं तो बस इतना ही जानता हूँ कि मेरा बेड़ा पार लगाने में सिर्फ आप ही समर्थ हैं। आप मुझ पर कृपा कीजिए, मुझे आशीर्वाद दीजिए।' और गुरु की बात सुने बिना ही घर चला आया।' मिथ्यात्व खुश होते हुए बोला। बाकी के दोनों बच्चे भी खुशी के मारे उछल पड़े।

''अरे तब तो दुनियाँ की कोई ताकत हमें यहाँ से नहीं भगा सकती।''पक्षी भी खुश होता हुआ।

बात आयी-गयी हो गई, पर इस बात को अभी पूर छह महीने भी न हो पाये थे कि प्रतिदिन की भांति पक्षी जब शाम को घर आया तो देखता है कि तीनों बेटे चिन्ता में डूबे हुए हैं। अपनी माँ को देखते ही बड़ा बेटा मिथ्यात्व चिन्तित होते हुए बोल ह्न ''माँ ! आज तो गजब हो गया, न मालूम कैसे इसके विचार इतनी जल्दी बदल गये। ऐसा लगता है कि इसने गुरु की बात को ध्यान से सुना है और सम्यक्त्व को समझ लिया है।''

''क्यों बेटा, क्या हुआ ? अब इसके कैसे विचार हो गये हैं ?'' पक्षी ने चिन्तित होते हुए पूछा।

बड़ा बेटा मिथ्यात्व चिन्तित होता हुआ अपनी माँ को चैतन्य वृक्ष के विचार सुनाते हुए बोला ह्न ''माँ ! चैतन्य मन ही मन कह रहा था ह्न ''ओ हो! आज तक मैं कितने गहन अन्धेरे में था जो 'दूसरे मेरा बेड़ा पार लगा देंगे' ह्न ऐसा मानता रहा। आज समझ में आया कि मेरे दु:खों को दूर करने में तो सिर्फ मैं ही समर्थ हूँ, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर ही नहीं सकता। मिथ्यात्वरूपी पक्षियों को भगाने का उपाय तो एकमात्र भेदविज्ञान ही है। ये मिथ्यात्वरूपी पक्षी (जड़कर्म की प्रकृति) तो मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं। ये तो मुझे छूते भी नहीं। मैं व्यर्थ ही अपनी उल्टी मान्यता से इन्हें दु:ख का कारण मानता रहा, पर खैर .....! ये उल्टी मान्यता भी तो एक समय की पर्याय में थी। मैं इस उल्टी मान्यता रूप था ही कब ? ये उल्टी मान्यता मैं नहीं, मेरा स्वरूप नहीं। ये भी मेरे से भिन्न ही हैं। अब मैं कभी भी

दूसरों के भरोसे नहीं पड़ा रहूँगा। अब मैं स्वयं ही अपने पुरुषार्थ से इस उल्टी मान्यता का शमन करता हूँ, जिससे मिथ्यात्वरूपी पक्षी (जड़कर्म की प्रकृतियाँ) स्वयमेव ही भाग जावेंगे। मुझे उनमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं आदि-आदि।''

अपने बेटे के मुख से चैतन्य-वृक्ष ने जब स्वयं ही पुरुषार्थ करके उल्टी मान्यता को छोड़ने का तथा दूसरों के भरोसे कभी भी नहीं पड़े रहने का निश्चय कर लिया है तो अब यहाँ से भाग जाने में ही हमारा भला है। अब हमें निश्चित ही यहाँ से भागना पड़ेगा। अब वह उल्टी मान्यता को निश्चित ही छोड़ेगा। बस यूँ समझो कि उल्टी मान्यता को वह छोड़ ही चुका। अच्छा होगा कि वो हमें धक्के देकर अपमानित करके यहाँ से निकाले, इसके पहले ही हम स्वयं यहाँ से भाग जावें। चलो उठो, भागो यहाँ से, उड़ो।''

और वह अपने तीनों बच्चों के साथ वहाँ से उड़न छू हो गया। चैतन्य-वृक्ष को आज अद्भुत शान्ति और आनन्द का वेदन हुआ। पक्षियों के भार से वह मुक्त जो हो चुका था।

दर्शनमोह नामक वह पक्षी अपने तीनों बच्चों के साथ उड़ता चला जा रहा था। अब वह किसी नये शिकार को अपने शिकंजे में फंसाना चाहता था। वह खोज कर रहा था कि उसके शिकंजें में स्वयं फंसने के लिए कौन तत्पर है। अचानक उसने देखा। काले कोट वाला एक पड़ा-लिखा बाबू सुबह-सुबह नहा धोकर अगरबत्ती से आरती उतार रहा है। पास में ही घी का दिया जला रहा है। आरती उतारते हुए वह बोलता जा रहा है। ''ओम् जय पारस देवा स्वामी जस पारस देवा। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र इत्यादि तू सबही देता। ओम् जय पारस...। तू ही सबके दु:ख को हरता मेरा दु:ख हरना। हो स्वामी....।

अब उसने अगरबत्ती एक तरफ रख दी तथा घी के दीपक से आरती उतारने लगा। दर्शनमोह नामक पक्षी यह सब देखकर बड़े बेटे मिथ्यात्व से

बोला ह्र ''बेटा यहाँ डेरा जमाने में कैसा रहेगा ? यहाँ धर्म के नाम पर अगरबत्ती की खुशबू का भोग किया जा रहा है। एकेन्द्रिय प्राणी अग्नि (दीपक) की धर्म के नाम पर बली चढ़ाई जा रही है। भगवान को स्त्री-पुत्रादि के दाता समझने वाले से बढ़कर मिथ्यात्वी और कौन मिलेगा ?''

''यह तो ठीक है, पर कोई और बड़ा शिकार देखते हैं। थोड़ा आगे चलते हैं।'' बड़ा बेटा मिथ्यात्व बोला।

थोड़ा और आगे जाते हैं तो क्या देखते है कि हजारों की सभा को घेरे हुए एक गंजा ब्रह्मचारी उच्चआसन पर बैठे हुए प्रवचन कर रहा है। वह जोर-जोर से चिल्ला रहा है ह्र ''कौन कहता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है। जो परद्रव्य को कर्ता नहीं मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। क्या बिना कुम्हार के ही घड़ा बन जाता है ? यदि मैं आपको उपदेश नहीं देता तो क्या आपको ज्ञान हो जाता ? आजतक हमने गुरु पर भरोसा नहीं किया, इसलिए हम संसार-सागर में भटक रहे हैं। यदि हमने गुरु का सच्चे हृदय से विश्वास किया होता तो वे कब के हमें संसार-सागर से पार लगा चुके होते। हमारी अंगुली पकड़कर हमें मोक्ष में ले गये होते, पर हमने आजतक परद्रव्य का भरोसा ही नहीं किया। एकान्ती बने रहे। देखो यहाँ पर साफ-साफ लिखा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का व्यवहार से कर्ता है।''

यह सब देख-सुनकर दर्शनमोह नामक पक्षी ने अपने बेटे की तरफ देखा। बेटा अपनी माँ के अभिप्राय को समझते हुए बोला ह्र ''हाँ यहाँ बिल्कुल ठीक रहेगा। यहाँ मिथ्यात्व की जड़े बहुत गहरी हैं। यहाँ अपना घोंसला लम्बे समय तक टिका रह सकता है।''

''तो फिर चलो यहीं अपना डेरा जमाते हैं।'' और फिर अपने तीनों बच्चों के साथ दर्शनमोह नामक पक्षी ने उस गंजे ब्रह्मचारी नामक चैतन्य-वृक्ष को धर दबोचा। वहाँ अपना बसेरा जमा लिया। चैतन्य-वृक्ष स्वयं जड़ के वशीभूत हो गया। ◻

भाग्यशाली

''आज मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली महसूस कर रहा हूँ'' बातों ही बातों में जब रमेश ने सुरेश ने कहा, तो सुरेश को थोड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह अपने सब मित्रों में से एक रमेश को ही अभागा समझ रहा था। उसके अनुसार सब सहपाठी मित्रों में से रमेश ही एक ऐसा मित्र था जो तरक्की के मामले में शून्य था, अन्य सभी मित्रों तो काफी अच्छी तरक्की कर चुके थे। प्राय: सभी मित्रों के पास कार, मोटर साईकिल, बंगला और लम्बा-चौड़ा व्यापार आदि सभी कुछ था। कभी-कभी तो उसको रमेश पर बड़ी करुणा आती थी। वह सोचा करता था कि यदि अब रमेश से मुलाकात हुई तो अवश्य ही उसको तरक्की के अच्छे-अच्छे उपाय सुझाएगा और इसी भावना की पूर्ति के लिए वह आज रमेश से मिलने उसके घर आया था।

साथ में वह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक भी रमेश को भेंट करने के लिए लेता आया था। लेकिन जब रमेश ने उसको अपने आपको बहुत भाग्यशाली होने की बात कही तो उसकी समझ में न आया कि आखिर उसके पास ऐसी कौन-सी बात हो गयी, जो वह अपने आपको बड़ा भाग्यशाली मान रहा है। कुछ देर मौन रहने के बाद आखिर उसने पूछ ही लिया ह्व ''किस मामले में तुम अपने आपको भाग्यशाली महसूस कर रहे हो ?''

''धर्म के मामले में'' रमेश ने सहज भाव से जबाब दिया।

''अरे मित्र ! यह भी कोई बात हुई ?'' कहते हुए सुरेश ने जोरदार ठहाका लगाया।

रमेश को ऐसे ही जबाब की आशा थी, फिर भी वह शान्त स्वर में बोला ह्व ''भाई ! यह कोई साधारण बात नहीं है। धर्म की उपलब्धि ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।''

इसी बीच सुरेश जेब से सिगरेट निकालकर सुलगा चुका था। मुँह में से धुँआ उगलते हुए लापरवाही के लहजे में वह बोला ह्व ''हाँ ठीक है, पर यह तो सब बूढ़े लोगों की बातें है, बुढ़ापे में करने की चीजें हैं। तुम तो अभी जवान हो मित्र ! जवानी में करने लायक ऐश-आराम से रहने के कौन-से कार्य किये हैं तुमने ? तुम तो अभी भी वहीं के वहीं हो जहाँ पहले थे।''

यह कहते हुए वह मूल बात पर आना चाहता था कि रमेश बीच में ही बोल पड़ा ह्व ''देखो मिस्टर ! यह तुम्हारी सबसे बड़ी भ्रान्ति है। धर्म कोई बुढ़ापे में करने की वस्तु नहीं है। क्या महावीर भगवान ने बुढ़ापे में दीक्षा ली थी? बुढ़ापे में जब साग-भाजी नहीं काट सकोगे, तब कर्म काटोगे ? अरे भाई ! धर्म की साधना तो रोटी और पानी की तरह हमारे जीवन का मूल आधार होना चाहिए। तुम तो धर्म के वास्तविक स्वरूप से ही अपरिचित हो न ! इसलिए ऐसी बात करते हो। खैर ! इसको समझने के लिए प्रतिदिन एक-दो

घण्टे का समय निकालने की आवश्यकता है। तुम्हें खाने-कमाने और मौज-शौक पूरे करने से फुरसत भी कहाँ है ऐसी बातें समझने की ? क्यों ?''

''अरे तुम तो फुरसत की बात करते हो ! फुरसत है ही कहाँ हमारे पास ? कितना लम्बा-चौड़ा कामकाज है। वह तो आज भी फुरसत कहाँ थी ? पर बड़ी मुश्किल से समय निकाल कर तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तरक्की प्राप्त हुई है। तुम्हें भी तरक्की प्राप्त करने की थोड़ी बातें बताऊँगा ह्न ऐसी भावना लेकर ही तुम्हारे पास हाजिर हुआ हूँ। आखिर तुम भी तो मेरे अभिन्न मित्र हो। अपने सभी मित्र इस मामले में आगे बढ़ चुके हैं, एक तुम ही पिछड़ रहे हो।'' सुरेश ने एक ही सांस में सब कुछ कह डाला।

यह सब सुनते ही रमेश के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गयी। मुस्कान बिखेरते हुए ही वह बोला ह्न ''देखो मिस्टर ! तुम्हें मेरा भला करने का विचार आया ह्न इसके लिए तो तुम धन्यवाद के पात्र हो, पर तरक्की क्या चीज है ह्न इस बात को भी अच्छी तरह नहीं जानते। जिसे तुम तरक्की कहते हो, वह वास्तविक तरक्की नहीं है। स्वयं को स्वयं के वास्तविक गुणों का ज्ञान होना तथा स्वयं में उन गुणों को प्रगट करना, वही वास्तविक तरक्की है, वही धर्म है। यही एक ऐसी तरक्की है जो शाश्वत है, स्वाश्रित है, स्वाधीन है और मैं जहाँ तक सोचता हूँ ऐसी तरक्की तुम्हारे पास बिल्कुल नहीं है। तुम्हारे पास ही क्या, अन्य मित्रों के पास भी यह बात नहीं है। आज तुम्हारा नैतिक स्तर कितना गिर गया है, सिगरेट, शराब क्या यही तुम्हारी तरक्की है, कभी-कभी तो मुझे तुम्हारे ऊपर अत्यन्त करुणा आती है। तुम्हारे ऊपर ही क्या, संयोगों की होड़ में अन्धाधुन्ध लगे हुए तुम जैसे सभी मित्रों पर करुणा आती है। परन्तु करें क्या ? किसी को सही बात समझने की दरकार ही नहीं है। उनकी होनहार ही का विचार करने पर समता आती है। ऐसा करो, तुम

यह पुस्तक ले जाओ। इसको तुम पढ़ना, तब तुम्हारी समझ में कुछ आएगा।'' कहते हुए रमेश ने उसके हाथ में 'मै कौन हूँ'' व ''सुख क्या है'' पुस्तकें थमा दीं।

बेचारा सुरेश किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह अब क्या करे ? हाथ में थमीं पुस्तकें देखकर उसको अपने बैग में रखी पुस्तक का ध्यान आया। झट से उसने बैग खोला और एक पुस्तक बाहर निकालते हुए बोला ह्न ''अच्छा मैं तुम्हारी पुस्तकें पढ़ूँगा, पर तुम भी मेरी यह पुस्तक रख लो। ''तरक्की के एक सौ एक आसान उद्योग-धन्धे नाम की यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। यद्यपि रमेश को इस पुस्तक की कतई आवश्यकता नहीं थी। वह अपने धन्धे से पूर्ण सन्तुष्ट था। उसे कहीं किसी प्रकार का अभाव नहीं था, पर वह सुरेश को निराश नहीं करना चाहता था। वह अच्छी तरह से इस बात को भांप गया था कि सुरेश की आवाज पहले की अपेक्षा काफी निराशा तथा बौखलाहट नजर आ रही थी। अत: उसने उसकी बात रखने के लिए पुस्तक ले ली और बोला ह्न अच्छी बात है, इसको भी देखेंगे।

अब किसी के पास कहने के लिए शायद कुछ नहीं था। कुछ देर मौन छाया रहा फिर सुरेश ने ही मौन तोड़ा ''अच्छा अब घर चलता हूँ, काफी समय हो गया है ?'' कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ।

''अरे बैठो न, ऐसी क्या जल्दी है ?'' रमेश मुस्कराते हुए बोला, पर सुरेश के लिए अब रुक पाना संभव नहीं था, अत: वह चलते हुए बोला ह्न ''नहीं, बस अब तो चलते हैं, फिर कभी मिलेंगे, गुड बाय !'' कहता हुआ वह चलता बना।

अब उसमें वह उत्साह नहीं रह गया था, जो उसको अपने घर से चलते वक्त था। रमेश के पास ऐसी बातें सुनने को मिलेंगी ह्न ऐसा तो उसने सोचा

भी नहीं था। उसका घर रमेश के घर से बहुत ज्यादा दूर नहीं था, इसलिए टेम्पो करने के बजाय पैदल ही घर चले जाने का निर्णय कर लिया। वह चला तो जा रहा था और सोच रहा था ह्न ''रमेश के विचारों में इतना सारा बदलाव कहाँ से आ गया ? जब साथ-साथ पढ़ते थे, तब तो रमेश के ऐसे धार्मिक विचार नहीं थे। क्या यह वही रमेश है जिसके साथ में रोजाना मौज-मस्ती उठाया करता था, जिसको रोजाना फिल्में देखे बिना चैन नहीं पड़ता था। जो लड़कियों को छेड़ने तथा सिगरेट पीने में ही अपनी शान समझता था। पूरे कॉलेज में दादा के नाम से प्रसिद्ध था, वही रमेश आज इतना शरीफ कैसे हो गया ? उसने तो कभी यह सोचा भी नहीं था कि मनुष्यों की प्रकृति भी अक्सर इस कदर बदल जाया करती है। आखिर इस बदलाव का क्या कारण हो सकता है ?'' यही सोचते-सोचते वह घर पहुँच गया। बैग को एक तरफ पटककर अपने कार्यों में व्यस्त हो गया।

समय ने बड़ी तेजी से पलटा खाया। सुरेश के पास तरक्की के नाम पर अब कुछ भी नहीं रह गया था। लम्बा-चौड़ा व्यापार-धन्धा लगभग ठप्प-सा हो गया था। भरा-पूरा परिवार भी बिछुड़ गया था। नौकर-चाकर सभी कुछ कूच कर गये थे। पहले वाली जवानी भी अब उसके पास नहीं थी। बुढ़ापा नजदीक आता जा रहा था। कार, मोटर आदि सभी कीमती वस्तुएँ भी समय-समय पर नीलाम हो चुकी थीं। भूतकाल की तरक्की के नाम पर उसके पास अब यदि कुछ बचा था तो सिर्फ उसका अपना निजी बंगला ही था, जिसको भी वह गिरवी रख चुका था और बदले में ली हुई रकम से वह अपना गुजारा करता था। थोड़ा-बहुत धन्धा-पानी चलता था और भी उसके पास कुछ वस्तुएँ थीं, शराब की खाली बोतलों के ढेर तथा शराब एवं सिगरेट पीने की बुरी आदत ह्न ये सब तो उसकी बाहर की तरक्की की उपलब्धि की निशानियाँ थीं; परन्तु उसके पास अन्तरंग की भी एक चीज विद्यमान थी

ह्न विचारशक्ति, विवेक।

वह सोचता रहता, आखिर सभी परिवर्तनों का कारण ? अचानक ये झटके क्यों आये ? आखिर इसका कुछ न कुछ कारण तो अवश्य होना चाहिए और फिर एक दिन वह सोचने लगा ह्न यदि यही हालत रही तो एक समय ऐसा आयेगा जब मुझे दो समय की रोटियाँ प्राप्त होना भी दुर्लभ हो जायेगा। शराब और सिगरेट तो तुझे छोड़ने ही चाहिए, अवश्य छोड़ देने चाहिए। इन्हें छोड़ने के प्रयत्न पूर्व में भी कई बार वह कर चुका था, लेकिन अपनी आदत के वश होकर वह मजबूर था। लेकिन आज तो उसने दृढ़ निर्णय कर लिया था कि वह इस आदत को आज से ही छोड़ देगा। पर फिर वही कमजोरी, फिर वही दृढ़ निश्चय। इस तरह परेशान होते-होते उसे एक उपाय सूझा, क्यों न साहित्य का सहारा लिया जाये ? हाँ, यही उत्तम सहारा है, वह उठ खड़ा हुआ। इधर-उधर कुछ ढूँढने लगा, अचानक उसे एक पुस्तक मिल गयी। जिसका नाम था ''सच्चे सुख का मार्ग'' बस उसी को पढ़ने में तल्लीन हो गया। उसको वह पुस्तक काफी रोचक लगी। ज्यों-ज्यों वह पुस्तक पढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों उसकी रुचि और ज्यादा बढ़ती जा रही थी। समस्त वस्तु-व्यवस्था का स्वरूप इसमें बहुत ही रोचक एवं सरलतम ढंग से समझाया गया था। तार्किक दृष्टिकोण से लिखी गयी यह पुस्तक उसकी प्रत्येक समस्या का समाधान करने में समर्थ सिद्ध हो रही थी। उसके जीवन में उठने वाले प्रत्येक प्रश्न का उचित समाधान उसको इसमें मिलता जा रहा था। पढ़ते हुए कभी-कभी तो वह स्वयं बोल उठता ह्न ''ओ हो ! ऐसी पुस्तक मैंने आजतक कभी पढ़ी ही नहीं।'' पुस्तक में कारण-कार्य, कर्मसिद्धान्त आदि समस्त प्रकार की वस्तुव्यवस्था को अच्छी तरह से समझाया गया था। उसने पुस्तक को पूरी तरह से पढ़ा और भी ऐसी ही पुस्तकें पढ़ने की जिज्ञासा जाग्रत हुई। उसको रमेश की याद आयी। पुस्तकें मँगवायी। पुस्तकों का बंडल प्राप्त हुआ। खोला, खोलकर देखा ह्न

मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार, नियमसार, परमार्थवचनिका प्रवचन तथा और भी कई प्रकार की छोटी-मोटी पुस्तकें थीं, जिनका नाम भी उसने अपने जीवन में आजतक कभी नहीं सुना था।

फिर क्या था ? स्वाध्याय शुरू हुआ। अब तो साहित्य ही उसका नशा बन चुका था। उसने शास्त्रों में गहराई से अवगाहन किया। अब तो उसका जीवन ही बदल गया। परिवर्तन, अद्भुत परिवर्तन आ गया था उसके जीवन में। वह अब अपने आपको कृतार्थ समझने लगा था। प्राप्त करने लायक सबकुछ उसने प्राप्त कर लिया था। धर्म के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो चुका था। यद्यपि उसके पास बाहरी तरक्की के नाम पर भूतकाल की तरक्की की अपेक्षा वर्तमान में कुछ भी नहीं था तथापि वह अपने आपको बड़ा भाग्यशाली महसूस कर रहा था।

अरहंतो के नमन का सर्वोत्कृष्ट फल

जब साधक जीव ऐसे अनन्तचतुष्टय स्वरूप अरहंत परमेष्ठी के आलम्बन से निज शुद्धात्मा की साधना-आराधना करता है तो उसे अल्पकाल में ही आत्मोपलब्धि होकर स्वानुभूति प्रगट हो जाती है। यही अरहंत भक्ति का या अरहंतों को नमन करने का सर्वोत्कृष्ट फल है। साथ में कषाय की मंदता और परिणामों की विशुद्धि से जो मुक्ति का साधनभूत सातिशय पुण्य बंधता है सो अलग। पर ज्ञानी धर्मात्मा का लक्ष्य एकमात्र स्वात्मोपलब्धि का ही रहता है, पुण्य बंध का नहीं। पर पुण्य भी अन्न के साथ भूसे की भांति सहज होता ही है, किन्तु ज्ञानी उसका मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहता है। उसकी दृष्टि में वह उपादेय नहीं होता।

ह्न णमोकार महामंत्र, पृष्ठ -**२४**

निजघर

मित्र गम्भीरमल, इस साल तो हमको कहीं न कहीं यात्रा चलना ही चाहिए। लोग तो प्रतिवर्ष यात्रा पर कहीं न कहीं जाते ही रहते हैं। मैं तो आजतक कभी गया ही नहीं। घर रहते-रहते मैं तो ऊब गया हूँ। बोलो क्या विचार है तुम्हारा ?'' सेठ सुखलाल ने अपने बचपन के मित्र के सामने अपना इरादा जाहिर किया तो बाबू गम्भीरमलजी कुछ सोच-विचार में पड़ गये, क्योंकि वे घूमने-फिरने के ज्यादा शौकीन नहीं थे। पर पिछले दो-तीन सालों से सुखलालजी जब बारबार आग्रह करने लगे तो कुछ देर सोचने के बाद वे बोले ह्न

''वैसे मेरी तो कोई खास भावना नहीं है, पर तुम्हारी ऐसी प्रबल इच्छा है तो चले चलेंगे। पर यूँ समझो कि व्यर्थ की भागदौड़ के सिवाय और कुछ हाथ लगनेवाला नहीं है।''

''अरे मित्र ! यात्रा को तुम व्यर्थ की भागदौड़ कहते हो ? तुम भी गजब करते हो ! यात्रा करने में तो नये-नये तीर्थस्थलों को देखने में आनन्द आता है और तुम इसमें व्यर्थ की परेशानी बताते हो। इतने सारे लोग क्या परेशानी उठाने के लिए प्रतिवर्ष यात्रा को जाते हैं ?''

सुखलालजी अपनी बात पूरी करते हुए रुके तो बाबू गम्भीरमलजी गम्भीर होते हुए बोले ह्न

''देखो भाई ! मेरा तो यह पूरा-पूरा विश्वास है कि जो आनन्द एवं शान्ति अपने घर में है, वह बाहर घूमने-फिरने और दौड़ा-दौड़ी करने में नहीं। खैर, चलो, तुम तो बताओ कि कहाँ की यात्रा करना है ?''

और फिर देखते ही देखते दोनों मित्रों ने यात्रा की पूरी योजना बना

डाली। कहाँ-कहाँ जाना, कहाँ से कहाँ जाना, साथ में क्या-क्या ले जाना आदि। पूरे तीन महीने का सफर तय हुआ। बाबू गम्भीरमलजी तो डेढ़ महीने से ज्यादा नहीं घूमना चाहते थे, पर सुखलाल को इतनी अवधि में संतोष नहीं था, अत: पूरे तीन महीने का सफर तय किया गया। आने वाले सोमवार को सुबह दस बजे की गाड़ी से प्रस्थान करने का उन्होंने निश्चय कर लिया।

यात्रा करने का प्रोग्राम निश्चित हो जाने की वजह से सुखलालजी की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था, अपने जीवन में पहली बार यात्रा का प्रसंग जो बना था। अपने आसपास की छोटी-मोटी यात्राएँ तो उन्होंने पहले भी बहुत की थीं, पर लम्बे सफर में चलने का तो यह पहला ही मौका था। उनका मन एक मीठी-मीठी गुदगुदी से भर गया। वे सोचने लगे ह्न ''वही बड़े-बड़े शहर, नये-नये स्थल, नयी-नयी वस्तुएँ, घूमना-फिरना और मौज-मस्ती।'' बड़ी बेसब्री के साथ सोमवार के दिन का इन्तजार करने लगे।

वह शुभ घड़ी आ गई। सोमवार के दिन दस बजे की गाड़ी से दोनों मित्र यात्रा के लिए प्रस्थान कर गये। पूरे सात घण्टे का सफर तय करने के बाद

शाम को बस ने उन्हें बावनगजाजी पर छोड़ दिया। वहाँ का शान्त प्राकृतिक वातावरण और विशाल जिनबिम्ब देखकर सुखलालजी की तबियत खुश हो गई। खुश होते हुए बोले ह्न

''वाह भाई वाह ! बहुत जोरदार स्थान है। जगत हो तो ऐसी। अपन जिस गाँव में रहते हैं, वह भी कोई जगह है ? यार गम्भीरमल ! यह तो रहने लायक स्थान है। कम से कम १५ दिन तो हमें यहाँ रुकना ही चाहिए।''

एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन। अभी चार दिन भी पूरे न होने पाये थे कि वहाँ रहते-रहते ऊबने लगे। वे बोले ह्न

''यार अब तो यहाँ से चलना चाहिए, यह तो बिल्कुल सुनसान जगह है।''

''पर तुम तो पन्द्रह दिन तक रहने की बात कर रहे थे ? गम्भीरमलजी ने हल्का-सा ठहाका लगाया।''

''हाँ, पर यहाँ तो मच्छर बहुत हैं यार। किसी और खास जगह पर अधिक दिन रुकेंगे। यहाँ से तो चलना चाहिए।'' सेठ सुखलालजी ने बहाना बनाया।

घूमते-फिरते वे कोलकाता, मुम्बई पहुँचे। इतने बड़े नगर में वे पहली बार गये थे। बड़े-बड़े बाजार, बड़े-बड़े बंगले, रेलें, मोटरें, सवारियाँ, भीड़-भाड़ से भरे बाजार, ताँगे, टेम्पो। वे नगर की जिस धर्मशाला में ठहरे, उसके सामने ही थोड़ी दूर पर एक बहुत बड़ा सब्जी मार्केट था। घूमते-फिरते सुखलालजी सब्जी मार्केट पहुँच गये। ऐसा वातावरण उन्होंने पहली बार देखा था। तरह-तरह के लोग, तरह-तरह की सब्जियों के ढेर, सब्जियों से लदी गाड़ियों की कतारें, मजदूरों एवं बेचने वालों की चिल्लाहट। ऐसे वातावरण को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। अब वे सब्जी मार्केट को पार करते हुए एक तंग गली में से गुजरने लगे। ज्यों ही उन्होंने उस तंग गली को पार किया

तो एक बार फिर उनकी आँखे आश्चर्य से फटी रह गयीं। सामने ही एक और बहुत बड़ा मार्केट था। मार्केट के अन्दर उन्होंने देखा ह्न यह चूड़ी बाजार था। चूड़ियों के ढेर के ढेर, तरह-तरह की चूड़ियाँ, तरह-तरह की औरतें, चूड़ियों की खनखनाहटें, वही मधुर-मधुर चिल्लाहटें। वे बहुत प्रभावित हुए। सोचने लगे ह्न यह नगर तो १५ दिन रुकने लायक है, घूम-घूमकर पूरे नगर को देखेंगे।

एक दिन घूमे, दो दिन घूमे, तीन दिन घूमे, चार दिन घूमे, पाँच दिन। अभी ५ दिन भी पूरे न हुए थे कि वे घूमते-घूमते थक गये, ऊब गये। वे अपने साथी से बोले ह्न

''यार इस भीड़-भाड़ और कोलाहल से मेरा तो सिर चक्कर खाने लगा है। अब तो यहाँ से शीघ्र प्रस्थान करना चाहिए।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा'' बाबू गम्भीरमलजी बोले।

और फिर वे दोनों अगले पड़ावों के लिए प्रस्थान कर गये। रास्तें में एक जगह तो सुखलालजी पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। हुआ यूँ कि एक जगह बस स्टॉप पर बस कुछ देर के लिए रुकी तो वे बिना किसी को कुछ बताये बस से नीचे उतर पड़े, पानी पीने के लिए। पानी पीकर जब वापिस आये तो देखा कि बस स्टॉप को छोड़ चुकी थी। बस के पीछे-पीछे भागे। एक तो लगातार की भागदौड़ से उनका स्वास्थ्य पहले से ही खराब और ऊपर से दोपहर की भरपूर गर्मी। उन्हें तो दिन में तारे नजर आने लगे। गम्भीरमलजी को जब खबर पड़ी कि सुखलालजी कहीं रह गये हैं तो उन्होंने बस रुकवायी, नीचे उतर कर देखा ह्न सुखलालजी पीछे-पीछे दौड़ते चले आ रहे हैं। पास आते ही गम्भीरमलजी ने टोका ह्न ''अरे भले आदमी ! कम से कम मुझसे कहकर तो जाना था।''

सुखलालजी हाँफते हुए बोले ह्न ''मैं समझा यहाँ बस कुछ देर के लिए

रुकेगी। हे भगवान ! इससे तो बढ़िया घर पर ही रहना था।'' तुम ठीक कहते थे यार ह्न '' घर में जो शान्ति है, वह बाहर नहीं।''

सुखलालजी की रोनी-रोनी सूरत देखकर बाबू गम्भीरमलजी को तरस आ गया।

पर तीर्थों और दर्शनीय स्थलों की यात्रा करते हुए जयपुर आते ही उनकी सारी उदासी दूर हो गयी। वे यहाँ जिस जगह ठहरे वहाँ का वातावरण उन्हें बहुत पसन्द आया। यहाँ एक बीस दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन चल रहा था। बड़े-बड़े विद्वानों के प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा सुनकर सुखलालजी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। ऐसा आध्यात्मिक वातावरण उन्होंने अपने जीवन में पहले कभी देखा ही नहीं था। उन्हें पता चला कि शिविर अभी तो सत्तरह दिन तक और चलेगा। फिर क्या था, वे अपने साथी से बोले ह्न ''यार हम तो पूरे सत्तरह दिन तक यहाँ ठहर कर शिविर का लाभ उठायेंगे।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा'' बाबू गम्भीरमलजी मुस्कुराते हुए बोले।''

यहाँ शिविर में शुद्धात्मा का स्वरूप, द्रव्यों की स्वतंत्रता, भेद-विज्ञान, धर्म, निमित्त-उपादान, कर्त्ता-कर्म का वास्तविक स्वरूप आदि विषयों पर विद्वानों द्वारा प्रतिदिन अच्छा स्पष्टीकरण होता था। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन, अभी पाँच दिन भी पूरे नहीं हो पाये थे कि सुखलालजी यहाँ रहते-रहते भी ऊबने लगे। वे मन ही मन चिन्तित भी हो उठे, क्योंकि यहाँ उनकी कुछ मान्यताओं पर हथोड़े पड़ने लगे थे। धर्म के नाम पर सारे जीवन भर जो कुछ किया कराया था, उस पर पानी फिरने लगा। यहाँ से कूच करने में ही उन्हें अपना भला दिखाई देने लगा। वे बोले ह्न ''यार गम्भीरमल अब तो यहाँ से चलना चाहिए। अकेले आत्मा-आत्मा सुनते-सुनते बोर हो गया हूँ मैं तो।''

''ये लो, अब स्वयं की बात सुनते-सुनते भी बोर हो गये। खैर ! जैसी तुम्हारी इच्छा। मेरे को तो कोई खास फर्क नहीं पड़ता, चाहे घर में रहो या बाहर, सूनापन हो या कोलाहल, बाग-बगीचे हों या कंकड़-पत्थर, फूल हो या काँटे। सुख-शान्ति तो इन सभी प्रकार की परिस्थितियों से अत्यन्त निरपेक्ष है।''

बाबू गम्भीरमलजी गम्भीर होते हुए बोले, पर सुखलालजी की समझ में कुछ भी नहीं आया। वे तो ''अच्छा-अच्छा'' कहकर चुप हो रहे।

घूमते-घूमते अब वे उदयपुर पहुँचे। मोतीमगरी और सहेलियों की बाड़ी देखकर सुखलालजी गद्‌गद् हो गये।

यहाँ की रौनक से प्रभावित होकर कुछ दिनों तक के लिए यहीं रुक जाने का विचार उनके मस्तिष्क में अभी सरसराहट कर ही रहा था कि तभी अचानक बाबू गम्भीरमलजी की निगाहें सुखलालजी के सिर पर केन्द्रित हो गयीं। वे बोले ह्न ''यार सुखलाल ! तुम्हारी टोपी कहाँ गयी ?''

सुखलालजी का हाथ शीघ्र ही अपने सिर पर घूम गया। चिन्तित होते हुए बोले ह्न ''टोपी ! मेरी टोपी ! मेरी टोपी ! यार मेरी टोपी कहाँ रह गई ?''और अगले ही क्षण वे वहीं पर सिर पकड़ कर बैठ गये। सारा मजा किरकिरा हो गया। चिन्तित होते हुए बोले ह्न ''यार टोपी तो जयपुर में ही रह गयी। अब क्या करें ?''

''करें क्या, गयी सो गयी। अब उसमें माल भी क्या धरा था ? नयी खरीद लेना।'' बाबू गम्भीरमलजी सान्त्वना देते हुए बोले ह्न ''चलो ! उठो !''

पर सुखलालजी से उठा नहीं जा रहा था। बड़ी मुश्किल से उठते हुए बोले ह्न ''चलो अब तो सीधे घर चलेंगे अब और कहीं नहीं जाना है। बहुत घूम लिये, कहीं भी सुख नहीं मिला।''

''सुख ? पर यार सुखलाल ! अपने निजघर के अलावा अन्य जगह सुख मिलेगा भी कैसे ? पर अभी तो घूमते हुए दो महीने भी पूरे नहीं हुए, अपन ने तो पूरे तीन महीने का सफर तय किया हुआ है।''

''गोली मारो सफर को यार ! अब तो सीधे अपने निजघर पहुँचने की इच्छा है।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा।''

पूरे दो महीने के बाद अपने निजघर को देखकर सुखलालजी को अपार हर्ष हुआ। दो महीने पहले अपने घर को छोड़ते हुए सुखलाल जितने खुश थे, इससे कहीं ज्यादा खुश अपने निजघर को देखकर हुए। बाबू गम्भीरमलजी उनकी खुशी का कारण समझ गये। वे बोले ह्न

''तुम अपने निजघर पहुँच कर खुश हो रहे हो, पर जिसे तुम निजघर समझ रहे हो, वह तुम्हारा वास्तविक निजघर नहीं है। तुम्हारा वास्तविक निजघर तो कोई दूसरा ही है। तुम अपने वास्तविक निजघर को खोज लो तो तुम्हारी खुशी का कोई ठिकाना ही न रहे। जो तुम्हारा वास्तविक निजघर नहीं है, उसमें भी तुम्हें इतनी सुख एवं शान्ति मिलती है तो भला सोचो ! वास्तविक निजघर में कितनी शान्ति होगी ? उसे खोजो न, उसे खोजते क्यों नहीं हो ? चूने और ईंटों से बने जिस घर को तुम अपना निजघर मानते हो वह तो निश्चित ही तुम्हारा नहीं है। वह तो एक न एक दिन छूटेगा ही। वास्तविक निजघर तो वही है, जो कभी छूटे नहीं और वह तो जानने-देखनेवाले तुम स्वयं ही हो। यकीन करो, मैं गलत नहीं कहता। □

जब पाप का उदय आता है, तब परिस्थिति बदलते देर नहीं लगती। जो अपने गौरव के हेतु होते हैं, सुख के निमित्त होते हैं, वे ही गले के फन्दे बन जाते हैं।

इन भावों का फल क्या होगा, पृष्ठ - ५८

प्रेरणा

व्यक्ति के जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं, जब वह अपने जीवन की पिछली यादों में खो जाता है। अपने पिछले जीवन में बीते हुए कड़वे अथवा मीठे क्षणों में निमग्न हो जाता है। उन पिछले क्षणों का लक्ष्य करके फिर से उन क्षणों का अनुभव करने लग जाता है। यदि वे पिछले क्षण सुख से संबंधित हों तो व्यक्ति का चेहरा प्रसन्नता से खिल जाता है और यदि दु:ख से संबंधित हों तो चेहरे पर उदासी छा जाती है।

पलंग पर लेटे हुए ब्रह्मचारी रायमल्लजी की भी इस समय कुछ ऐसी ही दशा हो गयी। तत्त्वचिन्तन करते-करते अचानक उन्हें अपने घनिष्ठतम मित्र, महान तत्त्वविचारक पण्डित टोडरमलजी की याद ताजी हो आई थी। देखते-देखते ही उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी-सी लग गयी।

ब्रह्मचारी रायमल्लजी आत्मानुभवी पुरुष थे। उन्हें विश्वास था कि एक समय की पर्याय का भी जब परमार्थ से मेरे साथ कुछ संबंध नहीं, तब पूर्वपर्यायों और उससे संबंधित अन्य द्रव्य की पर्यायों के साथ संबंध की तो बात ही क्या है ? फिर भी इस समय जीवन की पूर्व पर्यायों का स्मरण हो जाने से ही उनकी आँखों में आँसू उभर आये थे। राग की विचित्रता भी कैसी अद्भुत है, राग के परिणमन को श्रद्धा की अपेक्षा भी तो नहीं है और फिर साधर्मियों के प्रति होने वाले राग की बात तो कुछ अलग ही प्रकार की है। कुछ देर बाद उनके आँसू तो थम गये, पर उनके चेहरे की उदासी दूर नहीं हुई। इस समय वे अपने जीवन की पिछली यादों में पूर्णरूप से खो गये दिखते थे।

अपने सभी साधर्मियों, मित्रों एवं शिष्यों की उदासी के कारण को

पण्डित टोडरमलजी भली प्रकार से जानते थे, तथापि उनकी उदासीनता दूर करने के प्रयोजन से वे मुस्कराते हुए बोले ह्न ''क्या बात है ? आप इतने उदास क्यों हैं ? सबके चेहरे लटके हुए क्यों हैं ?''

किसी से कुछ भी कहते न ही बन रहा था। सबके चेहरों पर गहरी खामोशी थी। ऐसा लग रहा था मानो कुछ भयंकर घटना घटित हो। सबके चेहरों पर गहरी उदासी थी, पर पण्डितजी तो अभी भी मुस्करा रहे थे, मानो अपनी मुस्कराहट वे उनको दे देना चाहते हों। अचानक एक भावुक हृदयवाला व्यक्ति फफक-फफक कर रो पड़ा। रोते हुए बोला ह्न ''साहब ! आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो, हमारा तो कलेजा फटा जा रहा है।''

''अरे ! तुम तो रोने लगे। भला इसमें रोने की क्या बात है ? देखो, यह कोई अच्छी बात नहीं है। यहाँ कोई दु:ख की बात ही नहीं है। यह तो खुशी का सबसे उत्तम अवसर है।'' टोडरमलजी मुस्कराते हुए कह रहे थे, पर शायद किसी पर कोई असर नहीं हो रहा था। लगभग सभी की आँखे गीली होती जा रही थीं। टोडरमलजी सबकी मन:स्थिति से भलीभाँति परिचित थे। वे आगे समझाते हुए बोले ह्न ''देखो भाई ! मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ कि आज मेरी खुशी का कोई ठिकाना ही नहीं है। मेरे जीवन के सबसे उत्तम क्षण यदि कोई हैं तो वे यहीं हैं। देखो, मरते तो सभी हैं, पर धर्म की रक्षा करते हुए प्राणों की बाजी लगाने का अवसर सभी को थोड़े ही प्राप्त होता है। देखो ! आयुकर्म का क्षय तो जिस समय होना होता है, उस समय हो ही जाता है। किसी के आयुकर्म के क्षय के समय निमित्त कारण रोग होता है। तो किसी के कुछ अन्य दुर्घटना आदि। आप सभी लोगों को तो प्रसन्नता होनी चाहिए कि मेरे आयुकर्म के क्षय के समय बाह्य निमित्त कारण तो ऐसा बनेगा कि जिसको देखकर आनी वाली सैकड़ो पीढ़ियाँ धर्म और सत्य के लिए जान की बाजी लगा देने की प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी। भला आप ही

बताइऐ ह्न मेरे और आपके लिए इससे बढ़कर खुशी की और क्या बात हो सकती है ?''

पण्डित टोडरमलजी सदा की भांति उस समय भी हँसते-मुस्कराते हुए समझाते जा रहे थे। टोडरमलजी जब चुप हो गये तो दौलतरामजी कासलीवाल याचना भरे स्वर में बोले ह्न ''साहब आप एकबार आज्ञा तो दीजिए। हम एकबार तो प्रयत्न करके देखे लें। शायद सुल्तान हमारी सत्यता को स्वीकार कर लें।''

''ओ हो, देखो भाई कासलीवाल ! हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। क्या तुम वस्तु स्वतंत्र से परिचित नहीं हो, जो ऐसी बातें करते हो ? जिस समय जैसा होना होगा उस समय अपने स्वकाल में वैसा ही तो होगा। यदि इस जीव का इस पर्याय से किसी अन्य पर्याय में क्षेत्रान्तर होने का अपना स्वकाल होगा तो वह उस काल में अपनी योग्यता से होगा ही, उसको टालने में कोई समर्थ नहीं है और यदि अन्य पर्याय में क्षेत्रान्तर होने का अपना स्वकाल नहीं होगा तो उसे अन्य पर्याय में बलात् कोई पहुँचा भी नहीं सकता, आया न समझ में ?'' इसलिए तुम्हें व्यर्थ में इसके लिए परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं है। बेहतर तो यही है कि आप सभी तत्त्वाभ्यास में अपना समय लगायें।'' पण्डित टोडरमलजी प्रेमपूर्वक तत्त्व का स्वरूप समझाते जा रहे थे।

जयचन्दजी बोले ह्न ''नहीं साहब, आप चाहे भले कुछ भी कहें; पर हम तो आपकी सत्यता को सिद्ध करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे ही।''

जयचन्दजी अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि एक अन्य व्यक्ति जोश में आकर चिल्लाया ह्न

''हाँ, हाँ, अवश्य प्रयत्न करेंगे और इसके बावजूद भी यदि आपको कुछ हो जाता है तो उस दुष्ट श्याम तिवारी को भी हम चैन की सांस नहीं लेने

देंगे, उसकी भी वह गत बनायेंगे कि ....''

वह व्यक्ति अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि टोडरमलजी एकदम आवेश में आ गये और उनके मुख से निकल पड़ा ह्न ''खबरदार, खामोश, क्या अब तक तुमने मुझसे यही सीखा है ? तत्त्वज्ञानी ऐसी बातें नहीं किया करते।'' कहते-कहते फिर वे शान्त हो गये। उस व्यक्ति की तरफ उन्मुख होते हुए मीठे शब्दों में समझाने लगे ह्न ''देखो भाई ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम आवेश में आकर ऐसी बात कर बैठोगे, सो वह तो मध्यस्थता का पात्र है। प्रत्येक जीव स्वयं का ही बिगाड़ अथवा सुधार कर सकता है, पर का नहीं, समझे न ? देखो ! और गहराई से विचार करें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी पूर्व पर्याय में मेरे भी उस प्रकार के दुष्ट परिणाम हुए होंगे, सो उसके निमित्त से ऐसी परिस्थितियाँ तो बननी ही थीं, उसमें किसी का क्या दोष ?'' वे तत्त्व की बातें हँसते हुए समझाते ही जा रहे थे।

उनकी तत्त्वज्ञान भरी बातें सुनकर सबके हृदय सामान्य होते जा रहे थे। इस विषय परिस्थिति में भी अपने नेता के मुख से तत्त्वज्ञान की ऐसी बातें सुनकर ब्र. रायमल्लजी के मुँह से निकल पड़ा धन्य हैं आप ! कहते-कहते अनायास ही उनकी आँखों से आँसू झड़ने लगे। वे बोले ह्न ''दादा असमय में आपका यह वियोग हम कैसे सहन कर सकेंगे ?''

''अरे काकाजी ! संयोग की तो वियोग होना ही है। प्रत्येक कार्य अपने स्वकाल में ही होते हैं, फिर समय-असमय की तो बात ही कहाँ है ? ज्ञान और आनन्द का घनपिण्ड अनादि-निधन त्रिकाली भगवान, वह तो कभी मरता ही नहीं है, उसका तो कभी वियोग होता ही नहीं है। उसे वियोग से रहित निज भगवान आत्मा के आश्रय से सब कुछ सहज हो सकता है। टोडरमलजी हँसते हुए समझाते ही जा रहे थे ह्न ''आप सभी उसी अनादि-निधन निज भगवान का आश्रय करें, उसी के अनुभव में सतत लीन रहें,

उसी भगवान की शरण लेवें, जगत में यहीं एक वास्तविक शरण है। उसकी शरण लेना ही एकमात्र सुखी होने का उपाय है। मेरा अन्तिम समय में यही एकमात्र संदेश है। इसी संदेश को आप जन-जन तक पहुँचावे। तत्त्व का अभ्यास करें एवं प्रसार करें।'' वे कहते-कहते गम्भीर हो गये। बोले ह्न ''यदि मेरे से आपके प्रति जाने-अनजाने कभी कोई गलत व्यवहार हो गया तो आप सभी जीव मुझे माफ करें। अच्छा अब मैं चलता हूँ।'' कहते हुए उन्होंने सभी से सामने हाथ जोड़ दिये और एक मीठी मुस्कराहट बिखेरते हुए पीछे मुड़कर साथ आये सिपाही से बोले ह्न ''चलो'' और फिर देखते ही देखते सबकी नजरों से ओझल हो गये।

पलंग पर लेटे हुए रायमयल्लजी को ये सब बातें याद आती जा रही थीं और उनके चेहरे की रंगत प्रति समय बदलती जा रही थी।

''आप धन्य हैं, सचमुच में आप धन्य हैं, आपको पाकर भारतभूमि अपने को आज गौरवान्वित अनुभव करती है और आपके इस ऐतिहासिक बलिदान से धर्मप्रेमी सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे।

सर्वोत्तम उपकार

तत्त्वज्ञान का दान देना ही सर्वोत्तम उपकार है। तीर्थंकर आदि भी ऐसा ही उपकार करते हैं। अत: क्यों न अपने शेष जीवन को तत्त्वाभ्यास एवं तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में ही सम्पूर्णतया समर्पित कर दिया जाय ? और इसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता हो; उन्हीं को जुटाने में अपने अर्जित धन का भी सदुपयोग क्यों न किया जाये ?

सुखी जीवन, पृष्ठ - **२०५**

(भगवान महावीर २६ सौ वाँ जन्म-कल्याणक वर्ष)

अहिंसा के पथ पर

(कहानी संग्रह)

लेखक :

जयन्तीलाल जैन, नौगामा

सम्पादक :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

फोन : ०१४१-५१५५८१, ५१५४५८

प्रथम छह संस्करण (२६ दिसम्बर, १९९० से अद्यतन)	:	२२ हजार २००
सप्तम संस्करण (१ मार्च, २००३)	:	३ हजार
योग	:	२५ हजार २००

मूल्य : दस रुपये

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाइस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय

(सप्तम संस्करण)

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर के माध्यम से कथा साहित्य के रूप में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है, 'अहिंसा के पथ पर' कहानी संग्रह भी उन्हीं में से एक है। इस कथा संग्रह में श्री जयन्तीलाल जैन की अठारह कहानियों का संकलन है, जो एक से बढ़कर एक हैं।

वैसे तो ये सभी कहानियाँ जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक) में प्रकाशित हो ही चुकी हैं। इन कहानियों में जयन्तीलाल ने जैनदर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को सरल ढंग से कहने का प्रयास किया है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि कथा साहित्य अन्य गद्य-पद्य साहित्य की तुलना में अधिक रुचिपूर्वक पढा जाता है। यदि हम इस लोकप्रिय शैली के माध्यम से जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों को लिखने और प्रकाशित करने का प्रयास करें तो आबाल वृद्ध और कम पढे-लिखे लोगों तक भी जिनवाणी पहुँचा सकते हैं।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अब तक कथानक शैली में सत्य की खोज, आप कुछ भी कहो, संस्कार, विदाई की बेला, राम कहानी, इन भावों का फल क्या होगा, विचित्र महोत्सव तथा प्रस्तुत कृति प्रकाशित की गई है जो हाथों-हाथ बिक रही है। शीघ्र ही अब आपके हाथों में 'राम कहानी' भी इसी शैली में प्रकाशित होकर पहुँच रही है।

हम चाहते हैं कि इसीप्रकार का उपयोगी कथा साहित्य और भी जितना संभव हो लिखा जावे और प्रकाशित होवे, ताकि सभी लोग तत्त्वज्ञान से लाभान्वित होते रहें।

कृति को आकर्षक बनाने की दृष्टि से प्रस्तुत संस्करण में स्थान-स्थान पर चित्रों का समावेश किया गया है। आवरण पृष्ठ को भी विविध रंगों में संजोया गया है, जिससे गेटप आकर्षक बन पड़ा है।

श्री जयन्तीलालजी एक उदीयमान कहानी लेखक हैं, उनकी दूसरी कृति विचित्र महोत्सव का भी अभी हाल में प्रकाशन किया गया है। हमारी उनके प्रति यही मंगल कामना है कि वे इस क्षेत्र में इसीप्रकार सक्रिय रहकर निरन्तर जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहें। लेखक की स्वाध्याय में तो गहरी रुचि है ही, कहानी साहित्य रचना के क्षेत्र में भी जो उन्होंने कदम रखा है, यह स्वागत योग्य है।

इस कहानी संग्रह के सम्पादन में श्री पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल तथा पुस्तक के प्रकाशन में श्री अखिल बंसल का जो सराहनीय सहयोग रहा, लेखक के साथ ये भी बधाई के पात्र हैं।

ह्न ब्र. यशपाल जैन एम.ए.
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

अपनी बात

''इन कहानियों का पुस्तकाकार प्रकाशित हो तो अच्छा रहे'' ह्न इसप्रकार के विचार तो कभी-कभी मुझे भी बनते रहते थे, परन्तु यह कार्य इतना जल्दी सम्पन्न हो सकेगा इस बात की आशा मुझे बिल्कुल नहीं थी। जब एक दिन अनायास ही आदरणीय पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल का एक अप्रत्याशित पत्र मुझे प्राप्त हुआ जिसमें कहानियों के पुस्तकाकार प्रकाशन का प्रस्ताव था, तो उसे पढकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

प्रस्तुत कहानियों को पुस्तकाकार रूप में आप तक पहुँचाने में जितना श्रेय मुझे जाता है, उससे भी कई गुना अधिक श्रेय इसकी प्रकाशक संस्था को जाता है।

जैसा कि आप जानते ही हैं, इनमें से कुछ कहानियों को छोड़कर अधिकांश कहानियाँ तो पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के सम्पादन में जैनपथ प्रदर्शक अंक में प्रकाशित हो ही चुकी हैं; जैसे-जैसे कहानियाँ छपती गईं और पण्डित भारिल्लजी का मार्गदर्शन और प्रोत्साहन मिलता रहा, वैसे-वैसे ही मेरे कहानी लेखन के उत्साह में वृद्धि होती गई।

इन कहानियों के लेखन में सर्वाधिक प्रोत्साहन एवं सहयोग मुझे मेरे अभिन्न मित्र श्री महेन्द्रकुमारजी जैन से भी समय-समय पर प्राप्त होता रहा। महेन्द्रकुमारजी एवं रमेशचन्दजी शाह ह्न ये दोनों ही मेरे तत्त्वाभ्यासी मित्र हैं। मेरे द्वारा लिखी गई कहानियों को सर्वप्रथम देखने का कार्य ये दोनों ही करते रहे हैं। इनकी नजरों से जब एक बार कहानी निकल जाती तो मैं पूर्णरूप से आश्वस्त हो जाता कि अब मेरी कहानी ठीक है।

जहाँ तक कहानियों के कथ्य का सवाल है, इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है, सबकुछ जिनवाणी का ही है। जो बात जिनवाणी सदाकाल से कहती आ रही है उसी को मैंने एक विशिष्ट शैली (कथानक) के माध्यम से आपके समक्ष रखने का प्रयास किया है और इस कार्य के करने में भी मैं तो मात्र निमित्त ही बना हूँ। वस्तुत: कहानियों का उत्पाद तो अपने स्वकाल में ही स्वयं की योग्यता से ही हुआ है। योग्यतारूप उपादान कारण जहाँ विद्यमान होता है, वहाँ मेरा जैसा कोई भी अन्य निमित्त कारण तो मिल ही जाता है। आप इसे इसी रूप में ग्रहण करें और इसका पूरा-पूरा लाभ उठायें।

जिसने भेद-विज्ञान के बल से स्व-शुद्धात्मतत्त्व का अनुभव प्राप्त कर लिया है, वही जीव सच्चे अर्थों में धर्मात्मा है और ऐसे धर्मात्मा को ही 'भाग्यशाली' कहानी में भाग्यशाली कहा गया है। इसके अलावा भौतिक साधनों से सम्पन्न होने के कारण जो अपने आपको भाग्यशाली मानते हैं, वे तो वस्तुत: अभागे हैं ही; पर जो लोग आत्मज्ञान से शून्य होते हुए भी अपने-आपको, धर्म की व्यावहारिक क्रियाओं को अंगीकार कर

लेने मात्र से ही मोक्षमार्गी एवं भाग्यशाली मान बैठे हैं, वे भी बहुत बड़े अभागे हैं। इस भाग्यशाली कहानी में आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टियों को ही भाग्यशाली कहा गया है।

प्राय: सभी कहानियों में मैंने तात्त्विक, नैतिक और सदाचार प्रेरक विषय देने का ही प्रयास किया है। जैन सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में हमसे कहाँ/किस तरह की भूलें होती हैं और उन्हें हम किस तरह सुधार सकते हैं, इस तरह का मार्गदर्शन देने की भी मैंने कोशिश की है। उदाहरणार्थ ह्न

सम्यग्दर्शन धर्मरूपी वृक्ष की जड़ है। जिसतरह से जड़ के बिना वृक्ष नहीं उसीतरह से सम्यग्दर्शन के बिना धर्म अथवा चारित्र भी नहीं। इसके बिना जो कुछ है वह धर्म अथवा चारित्र का आभास मात्र है।

उल्टी मान्यताएँ ही संसार के दु:खों का मूल कारण है। अपने से भिन्न ऐसा कोई परद्रव्य (गुरु) मुझे संसार के दु:खों से छुड़ा लेगा ऐसा मानना यह एक उल्टी मान्यता है। यह मान्यता ही बन्धन का मूल कारण है। मेरे स्वयं के दु:खों को दूर करने में सिर्फ में ही समर्थ हूँ, दूसरा कोई नहीं। दूसरों की कृपा से आजतक न तो कभी किसी का कल्याण हुआ है और ना ही होगा। मुक्ति का मार्ग स्वाश्रित है, पराश्रित नहीं, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता।

अनन्तधर्मात्मक इस विश्व को जब हम प्रमाण दृष्टिपूर्वक न देखते हुए एकान्त दृष्टिपूर्वक उसके कुछेक धर्मों को ही देखने लग जाते हैं, तभी हमें इस विश्व में निर्दोषों के साथ अन्याय एवं अत्याचार आदि होते हुए दिखाई देते हैं; परन्तु वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है। जब हम एकान्त दृष्टिपूर्वक देखने लग जाते हैं, तब हमें राग-द्वेष एवं दु:ख का सामना करना पड़ता है; परन्तु प्रमाणदृष्टि से देखने पर वीतरागता एवं सुख की उत्पत्ति होती है। इसी बात को मैंने कहने का प्रयास किया है।

''प्रभाव'' एक ऐसी कहानी है, जिसमें विवादास्पद सैद्धान्तिक विषयों को जिनागम के आलोक में तार्किक दृष्टिकोण पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

इसके अलावा भी अन्य कहानियों में जो कुछ कहा गया है। वह तो एकदम स्पष्ट है ही। आप उनका स्वाध्याय रुचिपूर्वक कीजिए। अपने इष्टमित्रों को भी इसके स्वाध्याय के लिए प्रेरित कीजिए और मेरी इस मेहनत को सफल बनाइये। अपने ज्ञानस्वभावी शुद्धात्मा के आश्रय से ही उत्पन्न होनेवाले परमसुख में तृप्त होकर अनन्तकाल तक जीते रहिये। बस, इसी भावना के साथ मैं अपनी बात पूर्ण करता हूँ।

२० मार्च, १९९० — जयन्तीलाल जैन, नौगामा

सम्पादकीय

सम्पूर्ण साहित्यिक विद्याओं में कथा साहित्य ही एक ऐसी लोकप्रिय विद्या है, जिसे बालक, युवा, वृद्ध, शिक्षित और साक्षर ह्न सभी व्यक्ति समान रूप से पसन्द करते हैं और रुचि से पढते हैं।

कथा शैली सरल और रोचक होने से सभी की समझ में भी सरलता से आ जाती है तथा पढने में अधिक थकावट भी नहीं आती।

कथासाहित्य में कहानीकार विषयवस्तु को छोटे-छोटे कथोपकथनों द्वारा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा प्रस्तुत करता है।

यद्यपि जैनदर्शन के अध्यात्म को कथा शैली में प्रस्तुत करना सहज नहीं है, क्योंकि यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म, गम्भीर और अनादि से अपरिचित है। इसीकारण सहज ग्राह्य भी नहीं है। फिर भी प्रथमानुयोग के माध्यम से प्राचीनकाल में भी इसी कथाशैली द्वारा जैनतत्त्वज्ञान को कहने के प्रयोग हुए हैं।

वयोवृद्ध पुरुषवर्ग और महिला वर्ग तो आज भी पुराण साहित्य ही अधिक पढता है, पर नवयुवकों और बालकों में स्वाध्याय की रुचि नहीं है। एतदर्थ नई कथा शैली के विकास की अति आवश्यकता है।

जो भी कथा-कहानियाँ नई शैली में इन दिनों प्रकाशित हुई हैं, उन्हें पाठकों ने सिर माथे लिया है, खूब पढा-पढाया है, प्रसन्नता भी प्रगट की है। 'सत्य की खोज' (उपन्यास) और 'आप कुछ भी कहो' (कहानी संग्रह) इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भाई जयन्तीलाल जैन ने भी इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयोग किया है। हम उनकी इन कहानियों को वर्तमान कहानी कला की कसौटी पर परखने के बजाय उनकी तात्त्विक विषयवस्तु को प्रस्तुत करने के प्रारम्भिक प्रयास को देखें तो हमें बहुत कुछ संतोष होगा।

श्री जयन्तीलाल जैन एक उदीयमान कहानी लेखक हैं, उनका मूल उद्देश्य कहानीकार के रूप में उभरना नहीं; बल्कि जैन तत्त्वज्ञान को कहानी के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाना है। उनकी प्रत्येक कहानी पाठकों को तत्त्वज्ञान तो देती

ही है, जैनदर्शन को समझने की जिज्ञासा भी उत्पन्न करती है और जैनसाहित्य को पढने की प्रेरणा भी देती है। इस दृष्टि से कहानियाँ सभी के लिए उपयोगी हैं।

श्री जयन्तीलालजी स्वयं स्वाध्यायशील हैं, उनका तत्त्वज्ञान उनकी प्रस्तुत कहानियों में झलकता है। ये सभी कहानियाँ हमारे पास जैनपथ प्रदर्शक में प्रकाशनार्थ आई थीं। जिनमें से अधिकांश कहानियाँ आवश्यक संशोधन के साथ समय-समय पर जैनपथप्रदर्शक में प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

इसे लेखक की सरलता, सहजता और उदारता ही कहना चाहिए कि कहानियाँ भेजने के साथ उन्होंने मुझे इनमें सम्पूर्णत: संशोधन करने का दायित्व भी सौंप दिया है और मार्गदर्शन की भावना भी खुले हृदय से प्रगट की। मैंने उनकी पवित्र भावना को पहचानकर अपनी अल्प मति के अनुसार उन्हें जो भी सम्भव परामर्श दिया और संशोधन सुझाये, उन्हें उन्होंने बहुत आदरभाव के साथ स्वीकार किया तथा हर्ष भी प्रगट किया।

आगे भी कहानियाँ लिखना और हमारे पास भेजना बराबर चालू रखा। धीरे-धीरे उनकी लेखन शैली में विकास होता गया और 'अहिंसा के पथ पर' जैसी कहानी भी उनकी लेखनी से ही प्रस्तुत हुई है।

इसी कहानी के नाम पर ही इस कहानी संग्रह का नाम भी 'अहिंसा के पथ पर' रखा गया है।

हमें आशा है कि भविष्य में भी कहानी लिखने का क्रम चालू रखकर जैनकथा साहित्य को समृद्ध करेंगे।

जैन साहित्य में वर्तमान शैली में ऐसा कथा साहित्य बहुत कम है, जिसे नई पीढी पढे और प्रभावित होकर जैनधर्म की ओर आकर्षित हो।

आशा है पाठक प्रस्तुत कहानियों द्वारा लाभान्वित होंगे ही, अपनी प्रतिक्रिया प्रगट करके लेखक को प्रोत्साहित भी करेंगे।

हम भी लेखक के उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ-साथ अपनी बात समाप्त करते हैं।

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

कहानी क्रम

१.	अहिंसा के पथ पर	१
२.	खट्टे अंगूर	१३
३.	एक शेर और तीन तत्त्वज्ञ	१६
४.	दो प्यासे कौए	२२
५.	कोयल, कौआ और लोमड़ी	२७
६.	तत्त्वज्ञ बनिया और नास्तिक दर्जी	३१
७.	अपराध बोध	३५
८.	प्रभाव	४०
९.	जिज्ञासा	४५
१०.	बिल्कुल ठीक ऐसा ही है	५१
११.	ठूँठ	५६
१२.	कौरे सपने	६२
१३.	करोड़ीमल का स्वप्न	६६
१४.	मिस्टर रूपप्रकाश	७३
१५.	घोंसला	८४
१६.	भाग्यशाली	९०
१७.	निजघर	९७
१८.	प्रेरणा	१०५

अभिमत

वास्तव में कहानी एक कला है। यह कला प्रस्तुत रचना में एक नया आयाम लेकर प्रस्फुटित हुई है। यदि कहानीकार सिद्धान्तों के बोझिल सम्वादों से इसे बचाकर सांकेतिक रूप में प्रस्तुत करने की शैली में दक्षता उपलब्ध करें तो वे एक उच्चकोटि के कहानीकार हो सकते हैं।

ह्न डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

इसमें उदीयमान लेखक की अठारह कहानियाँ संकलित हैं। कहानियों के शीर्षक बालकोपयोगी कहानियों से है, लेखक ने उनके माध्यम से जैनसमाज को धार्मिक सिद्धान्त भी समझाना चाहे हैं

ह्न लक्ष्मीचन्द 'सरोज', जावरा

कहानी हिन्दी का सशक्त काव्यरूप है। विवेच्य कहानी संग्रह की अठारह कहानियों में तात्त्विक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। सुधी लेखक ने लोक में व्याप्त सन्दर्भों को लेकर कहानी के ढाँचे में कथ्य को इसप्रकार फिट किया है कि पाठक/श्रोता में पूरी कहानी पढ़ लेने की ललक चिरंजीवी बनी रहती है। यह इन कहानियों की सबसे बड़ी सफलता और विशेषता है। *ह्न डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया,* अलीगढ़

इन कहानियों को साहित्यिक परिवेश की कहानी कला की कसौटी पर परखने के बजाय तात्त्विक वस्तु को ग्रहण किया जाए, तो उचित होगा। कुल अठारह कहानियों की यह छोटी-सी कृति गन्ने की तरह मधुर जीवन तत्त्व रस से सनी है। गन्ने का कौन-सा अंश अधिक मिठास देता है, यह समझना लगभग असम्भव ही है।

ह्न प्रदीप भटनागर 'दीपक' राजस्थान पत्रिका, २४ फरवरी, १९९९

पुस्तक बड़ी ही रोचक, शिक्षाप्रद तथा सरल भाषा में लिखी गई है। पुस्तक के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है।

ह्न डॉ. राजाराम जैन, आरा

कहानी संग्रह में उदीयमान कथाकार ने सरल व सहज भाषा शैली में संक्षिप्त कथानकों व घटनाक्रमों के माध्यम से, मात्र जैनदर्शन के न कहकर मैं कहूँगा कि नैतिक जीवन कई अनुकरणीय व विचारणीय आदर्शों व तथ्यों को प्रस्तुत किया है, जिनसे आवाल-बृद्ध सभी वर्गों के पाठक वृन्द कथावस्तु की रोचकता का स्वाद तो लेवें ही, जीवन के लिए कई महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकेंगे। कथावस्तु के बीच में एवं प्राय: अन्त में सिद्धान्तों की प्रस्तुति नि:सन्देह मननीय व पठनीय है। *ह्न डॉ. दामोदर शास्त्री,* नई दिल्ली-१६

प्रतिभाशाली कहानीकार ने इन कहानियों में पदे-पदे जैन सिद्धान्त और जैनदर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल एवं सरस पद्धति से लिखने का स्तुत्य प्रयास किया है। जो पाठक ध्यान से पहली कहानी पढ़ लेगा वह अन्तिम कहानी तक पढ़े बिना नहीं रहेगा। पुस्तक पठनीय है।

ह्न अमृतलाल शास्त्री, लाडनूँ

भेद-विज्ञान को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत कर लेखक ने सराहनीय कार्य किया है। भाषा सरल और सशक्त है। *ह्न डॉ. सुदर्शनलाल जैन* वाराणसी

श्री जयन्तीलालजी की अठारह कहानियों के इस सुन्दर संस्करण में जैनदर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का सरस-सरल शैली में निरूपण हुआ है। छोटे-बड़े सभी पाठियों के लिए यह पुस्तक एक रुचिवन्त मानसिक परोसन कहा जा सकता है। *ह्न डॉ. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति',* अलीगढ़

अठारह कहानियों के संकलन में सभी एक से एक बढ़कर एक हैं। प्रतिभाशाली कथाकार ने जैनदर्शन को कथानक के रूप में प्रस्तुत कर उसे रोचक शैली में परोसा है।

ह्न अखिल बंसल, सम्पादक ह्न समन्वय वाणी, जयपुर

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	२५१.००
२. श्री बाबूलालजी तोतारामजी जैन, भुसावल	२५१.००
३. श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध.प. श्री पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर	२५१.००
४. श्री माँगीलालजी अर्जुनलालजी छाबड़ा, इन्दौर	२५१.००
५. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प.स्व. श्री घीसालालजी छाबड़ा, सीकरवाले	२५१.००
६. ब्र. कुसुम जैन, बाहुबली कुम्भोज	२५०.००
७. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	२०१.००
८. चौधरी फूलचन्दजी जैन, मुम्बई	१११.००
९. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	१०१.००
१०. श्रीमती गुलाबीदेवी लक्ष्मीनारायणजी रारा, शिवसागर	१०१.००
११. स्व. श्रीमती धापूदेवी ध.प. स्व. श्री ताराचन्दजी गंगवाल की पुण्य स्मृति में, जयपुर	१०१.००
कुल राशि :	२१३०.००

प्रकाशकीय

(सप्तम संस्करण)

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर के माध्यम से कथा साहित्य के रूप में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है, 'अहिंसा के पथ पर' कहानी संग्रह भी उन्हीं में से एक है। इस कथा संग्रह में श्री जयन्तीलाल जैन की अठारह कहानियों का संकलन है, जो एक से बढ़कर एक हैं।

वैसे तो ये सभी कहानियाँ जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक) में प्रकाशित हो ही चुकी हैं। इन कहानियों में जयन्तीलाल ने जैनदर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को सरल ढंग से कहने का प्रयास किया है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि कथा साहित्य अन्य गद्य-पद्य साहित्य की तुलना में अधिक रुचिपूर्वक पढा जाता है। यदि हम इस लोकप्रिय शैली के माध्यम से जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों को लिखने और प्रकाशित करने का प्रयास करें तो आबाल वृद्ध और कम पढे-लिखे लोगों तक भी जिनवाणी पहुँचा सकते हैं।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अब तक कथानक शैली में क्षत्र-चूड़ामणि, सत्य की खोज, आप कुछ भी कहो, संस्कार, विदाई की बेला, राम कहानी, इन भावों का फल क्या होगा, विचित्र महोत्सव तथा प्रस्तुत कृति प्रकाशित की गई है जो हाथों-हाथ बिक रही है। शीघ्र ही अब आपके हाथों में 'हरिवंश कथा' भी इसी शैली में प्रकाशित होकर पहुँच रही है।

हम चाहते हैं कि इसीप्रकार का उपयोगी कथा साहित्य और भी जितना संभव हो लिखा जावे और प्रकाशित होवे, ताकि सभी लोग तत्त्वज्ञान से लाभान्वित होते रहें।

कृति को आकर्षक बनाने की दृष्टि से प्रस्तुत संस्करण में स्थान-स्थान पर चित्रों का समावेश किया गया है। आवरण पृष्ठ को भी विविध रंगों में संजोया गया है, जिससे गेटप आकर्षक बन पड़ा है।

श्री जयन्तीलालजी एक उदीयमान कहानी लेखक हैं, उनकी दूसरी कृति विचित्र महोत्सव का भी अभी हाल में प्रकाशन किया गया है। हमारी उनके प्रति यही मंगल कामना है कि वे इस क्षेत्र में इसीप्रकार सक्रिय रहकर निरन्तर जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहें। लेखक की स्वाध्याय में तो गहरी रुचि है ही, कहानी साहित्य रचना के क्षेत्र में भी जो उन्होंने कदम रखा है, यह स्वागत योग्य है।

इस कहानी संग्रह के सम्पादन में श्री पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल तथा पुस्तक के प्रकाशन में श्री अखिल बंसल का जो सराहनीय सहयोग रहा, लेखक के साथ ये भी बधाई के पात्र हैं।

ह्र ब्र. यशपाल जैन एम.ए.
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर